प्रकृति और परमात्मा

लेखिका : रेखा तारानी

॥ श्री ॥

प्रकृति और परमात्मा

श्रीमती रेखा तारानी
बीए., एलएलबी.
मैनेजिंग डायरेक्टर, तारानी हॉस्पिटल
मो. 9351368893

मूल्य : निःशुल्क

॥ श्री ॥

सर्व मंगल मंगल्ये शिवे स्वार्थ साधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणी नमोस्तुते ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वमम देव देव ॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ॥
सर्वे भत्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग भवेत् ॥

|| श्री ||

लांऊ पै सिर लाज हूँ सदा कहाऊँ दास ।
गण है गाऊं तुझ गुण, पाऊं वीर प्रकाश ।।

हे गणपति! मैं आपके चरणों में लज्जा से अपना सिर झुकाता हूँ क्योंकि मैं आपका सदा दास कहलाता हूँ। अत: मैं आपका गण होकर आपका गुणगान करता हूँ जिससे मुझे वीर रस का प्रकाश मिले। अर्थात मैं दासत्व की भावना का उन्मूलन करके अपनी इस कृति में वीर रस का मूर्तिमान स्वरूप खड़ा कर सकूँ।

प्रथम पूज्य गिरजा तनय, कोटि सूर्य सम आभ ।
विघ्न विनाशक आप है, जीवन के शुभ लाभ ।।

लंबोदर गजकर्ण का विघ्नविनाशक रूप ।
सिद्ध सभी कारज करे, पावन रूप अनूप ।।

शंकर सुत है विश्वमुख, हे गणराज विशाल ।
विघ्न हरो विघ्नेश तुम, हे प्रभु दीनदयाल ।।

संकट मोचन गणपति, प्रिय मोदक का भोग।
सकल कामना सिद्ध हो, सिद्धि विनायक योग ।।

शिवनंदन प्रभु गज वंदन, रिद्धि सिद्धि के नाथ।
श्री गणेश के चरण में, झुका रहे ये माथ ।।

सरस्वती वंदना (विद्या) दोहे

माँ वीणा वरदायिनी, लगी आपसे आस।
भाव अनूठे भरे माँ, अंतर करे उजास ।।

पंख भावना को मिले, निर्मल मन की चाह।
हंस वाहिनी शारदे, चले सत्य की राह ।।

आन खड़े है द्वार माँ, करना माँ उपकार।
ज्ञान कोष है रिक्त माँ, मिले कलम को धार ।।

अमर लेखनी आपसे, आप कृपा का द्वार।
होए दूर तम हृदय का, आशा का संचार ।।

माँ सरस्वती राखिए, आप सभी का मान।
सृजन सरस सब ही करें पाएं निज पहचान।

।। श्री ।।

परमपिता परमात्मा
को
समर्पित

संस्करण : 2025

प्रकाशक

साधना प्रिन्टर्स, जयपुर

स्कन्द पुराण में पार्वती को ब्रह्माण्ड की जननी कहा गया है।

इसमें ब्रह्मा, देवताओं और तीनों लोकों को बनाने का श्रेय भी पार्वती को दिया गया है। इस पुराण के अनुसार पार्वती ने तीनों गुणों (सत्त्व, रजस और तपस) को पदार्थ (प्रकृति) में जोड़ कर ब्रह्माण्ड की रचना की।

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
1.	भूमिका	7
2.	धन्यवाद	9
2.	आभार	10
3.	प्राक्कथन	11
4.	प्रकृति और परमात्मा	14
5.	प्रकृति	15
6.	प्रकृति के प्रकार	16
7.	पंचतत्व	19
8.	मन, बुद्धि, अहंकार, मन तत्व	21
9.	मन के ऊपर संत कबीर के दोहे	23
10.	बुद्धि तत्व	25
11.	अहंकार तत्व	31
12.	स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर	33
13.	इन्द्रियाँ	35
14.	प्रकृति का स्वरूप	36
15.	भगवान की प्रकृति (शक्ति)	41
16.	सृष्टि की रचना	42
17.	सृष्टि का महत्व	52
18.	आत्मा	54
19.	परमात्मा	59
20.	परमात्मा कौन	60
21.	परमात्मा ही परम-शक्ति है	69
22.	परमात्मा का विराट रूप स्वरूप दर्शन	75
23.	परमात्मा चारो ओर है	85
24.	लेखिका की कलम से... हरि, अनंता, हरि कथा अनंत है	88
25.	लेखिका के विचार	91

क्र.सं.	विवरण	पेज नं.
27.	श्री गणेश जी की आरती	93
28.	श्री जगदीश जी की आरती	94
28.	श्री शिव चालीसा	95
29.	शिव रूद्राष्टकम्	98
30.	भगवान शिव की आरती	99
31.	शिव स्तुति	100
32.	श्री शिव पंचाक्षर स्तोत्रम्	101
33.	शिव तांडव स्तोत्र	102
42.	श्री दुर्गा चालीसा	105
43.	आरती श्री अम्बाजी	107
44.	आरती श्री जगदम्बे माँ	108
44.	श्री विंध्येश्वरीजी चालीसा	109
45.	आरती श्री विंध्येश्वरीजी	111
34.	श्री राम चालीसा	112
35.	आरती श्री रघुवर जी	114
36.	श्री राम स्तुति	115
28.	श्री कृष्ण चालीसा	116
29.	आरती श्री कुंजबिहारी जी	118
37.	श्री हनुमान चालीसा	119
38.	संकट मोचन हनुमानाष्टक	121
39.	बजरंग बाण	122
40.	किष्किन्धा काण्ड	124
41.	आरती श्री हनुमानलला जी	126

भूमिका

आज दिन बुधवार, दिनांक 3 जनवरी 2024 समय था 3 बजे दोपहर का। अपनी प्यारी–प्यारी पोती कियाना को खिलौनों से, कविताएँ सुनाकर और पिक्चर (फोटो) माई फर्स्ट बोर्ड बुक दिखा रही थी।

यह मेरे जीवन का महानतम दिन बनेगा सोचा न था। आम लोगों की तरह मैंने भी कड़ी मेहनत और संघर्ष किया है। मैंने समाज सेवा का काम किया। फिर भजन भक्ति (ग्रुप) बनाकर भागवत गीता का सामूहिक पाठ हम सब करते इससे मेरा जीवन बदला, गीता अध्यायों को पढ़ने सुनाने में और परमात्मा को समझने में

बचपन से बागवानी का शौक हुआ। यह मुझे परमात्मा को समझने में सहायक हुआ। पता चला कि हर एक मनुष्य खुश रहना चाहता है। कष्ट क्लेश में रहना किसी भी व्यक्ति को अच्छा नहीं लगता है। खुश रहने के लिए प्रत्येक प्राणी अपनी–अपनी योग्यता के अनुसार दौड़ रहा है। मनुष्य का जो मन है ना, इतना भौतिक साधनों का उपयोग करके भी शान्त नहीं हो पा रहा है। वह परम शान्ति को प्राप्त नहीं हो पा रहा है क्योंकि मन की शान्ति भौतिक साधनों से प्राप्त हो ही नही सकती । सन्त सत्पुरूष सच्चिदानन्दधन होते हैं उनके वचनों में दिव्य प्रभाव होता है, जो जीव को शाश्वत आनन्द

की प्राप्ति करा देता है।

मैं उम्मीद करती हूँ कि परमार्थ पथ के अभिलाषी इस *प्रकृति और परमात्मा* नामक पुस्तक से आध्यात्मिक रस का पान करते हुए अपना यह मानुष जन्म सफल करेंगे।

प्रकृति और परमात्मा का ज्ञान पाकर आत्मज्ञान को प्राप्त हुए, फिर परमात्मा की भक्ति करके मुक्ति को प्राप्त होंगे।

जब याद करते है मुझे प्रेमी हृदय से एक बार।
एकदम आ जाता हूँ चाहे रहूँ सात समुद्र पार ।।

धन्यवाद

मैं धन्यवाद देती हूँ परमपिता परमात्मा को, जिनकी कृपा से मेरी यह सोच हुई कि मैं अपने मन की बात रूहानियत प्रकृति और परमात्मा के बारे में शब्दों में ढाल सकूं।

मेरे गुरु ने अपने ज्ञानरूपी प्रकाश से मेरी आँखें खोल दीं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करती हूँ। मैं धन्यवाद देती हूँ डॉ. अशोक गुप्ता का जिन्होंने मेरी सोच बदली। मैं धन्यवाद देती हूँ अपने पिताश्री परसराम रामनानी को, जिन्होंने मुझे अपार खुशियाँ दी।

हे कृष्ण! आप सृष्टि के उद्‌गम हैं। मैं आपको सादर प्रणाम करती हूँ।

मैं सभी भक्तों को नमस्कार करती हूँ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।

आभार :-

मैं आभार व्यक्त करती हूँ उन सभी लेखकों की शास्त्रियों, प्रकाशको, पण्डितों, वैज्ञानिको, शोधकर्ताओं, ब्राह्मणों का।

पुस्तक के प्रकाशक :-

धन्यवाद देती हूँ पुस्तक के प्रकाशक को। उन्होंने इस सद्कर्म का उत्कृष्टता से निर्वहन किया। साथ ही आभार कॉपी एडिटर्स एवं गाइड श्री नरेश तारानी जी एवं सभी टीम सदस्यों का।

प्रकृति और परमात्मा :-

जिन्होंने परमात्मा को समझने और परमानंद पाने के लिए, मुझे दिल से अनुभव प्रदान किया, उन सभी ग्रुप मेम्बर के प्रति आभारी हूँ। वे हमेशा आध्यात्म की ओर अग्रसर रहे हैं और मुझे प्रेरित करते हैं। उनकी आध्यात्मिकता और श्रद्धा की वजह से अन्दरूनी (रूहानी) खुशी हासिल करवाने का कार्य पूर्ण हुआ।

बेटियों डॉ. कनिका, डॉ. ग्रीनम्, बेटे डॉ. योगेश, डॉ. कनिष्क, प्यारी पोती कियाना से मेरा हर दिन रोशन होता है। मेरे पति डॉ. आई.डी. तारानी आध्यात्म के इस रूहानी मार्ग को समझने और प्रकृति और परमात्मा में निरन्तर एकात्म के लिए मेरे जीवन पथ को उजासपूर्ण किया।

क्षमा :-

किसी भी प्रकार की गलती के लिए पाठकों से क्षमा माँगती हूँ।

प्राक्कथन :-

इस पवित्र वृतान्त के लिखने की शुरूआत मेरे पति डॉ. तारानी से मिली, जो सद्साहित्य के नियमित पाठक हैं। मेरे पास भी गुरूओं की आध्यात्म पर लिखी अनेक किताबें हैं। जब कोरोना का टाइम आया, तब राधास्वामी सन्त की प्रभात का प्रकाश (पुस्तक) बार–बार पढ़ती। मैं और बड़ी बहिन रोज रात को फोन पर बात करते और हालचाल पूछते। आपके म.प्र. में क्या माहौल है, कोरोना के कारण लॉक डाउन से कितना नुकसान हुआ। घरों में लोग भोजन के लिए मोहताज हो गए। राशन पानी भी नहीं था। हम रोज फोन पर 10 या 15 मिनट पुस्तक पढ़ते। भगवान परमात्मा पर विश्वास रखते । अपने को और सबों को धैर्य रखने के लिए कहते।

उस समय हमारे यहां महीने में 3 या 4 बार सत्संग होते थे। गीता पाठ होता। जब लॉकडाउन हुआ तब वे भी बंद हो गए। एक बार मैं डॉ. साहेब (पति) के साथ लॉकडाउन पर बातचीत करते हुए व्यथित हो रही थी कि हमारे यहां घर पर सत्संग गीता पाठ होता था। लॉक डाउन हो गया, अब कैसे होगा। तब डॉ. साहेब ने कहा क्यों घबराती हो अगर लॉक डाउन हो गया लोग लॉकडाउन के कारण नहीं आ सकेगे तो क्या हुआ, गीता पाठ भजन तो कर ही सकते है। मैं आपका साथ दूँगा। मैं बहुत खुश हुई। परमात्मा का शुक्रिया किया लॉकडाउन में डॉ. साहेब गीता पाठ करते। मैं ढोलक बजाती, भजन गाती । इस तरह से हमने कोरोना के 2 साल निकाल लिए । बीच–बीच में जब लॉक डाउन होता, तब घर में पाठ करके वाट्सएप पर ग्रुपों में डाल देते थे।

उस समय सब बहनों का हमारे प्रति प्यार हमें आत्म ऊर्जा

देता। हम कहते घरों में ही गीता पाठ करों, भजन करो। तब वे अपने अपने घरों में भजन भक्ति करती। अब मुझे ये लगता है कि इस इतिहास का प्रारम्भ तो परमात्मा की कृपा व आशीर्वाद से हो गया और उनकी कृपा से काफी सालों से मन में अनुभव व परमात्मा की महान कृपा से आत्मिक बल, अध्यात्म का भी होना शुरू हो गया, मुझे यह कभी विचार न आया कि इसे पुस्तक के रूप में छपवाया जाए। लेखन कार्य में अनुभव न होने के कारण मैं घबरा रही थी, परन्तु मेरे परिवार ने, मित्रों ने, जो मेरे खास हैं जोर दिया कि आप लिखो कोरोना के बाद सब का स्वास्थ्य देखकर, सुनकर। साथियों, रिश्तेदारों सत्संगियों को इस संसार को छोड़कर जाते देखा। मन में ये लग रहा था कि ये सब क्या क्या हो रहा है कि हम सब हम क्या है। ऐसी भी विकट परिस्थितियों में आध्यात्म की ओर अपने आप, आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है।

आज मैं 64 साल की हो चुकी हूँ। मैं चाहती हूँ कि परमात्मा के बारे में लिखूं जो आने वाली पीढ़ियों के लिये प्रेरणा और परमात्मा से मिलाप का कार्य हो। इस प्रकार ये लिखने का कार्य शुरू हुआ। परमात्मा की कृपा से यह लेखन चलता रहा। मेरी इस पुस्तक के गाइड ने मेरे से पुछा कि आप इस पुस्तक को कितने समय में पूरा करेगी।

मैंने कहा यह सृजन प्रकृति और परमात्मा का मेरे अन्दर बहुत समय से चल रहा है। परमात्मा की कृपा से जल्द पूरा होगा।

इस पुस्तक में संतों महापुरूषों के वचन भी है। इसमें गीता के अध्यायों विभूतियों, विराट स्वरूप का वर्णन भी है। कुछ बातें अपने अनुभव की भी हैं। मैने इस पुस्तक के लिये कई बातों के बारे में फिर से खोज शुरू की तथा पुस्तक में वृतान्तों के द्वारा परमात्मा

को समझने का प्रयास किया।

मैं मार्गदर्शन करने वाले सभी महानुभावों की आभारी हूँ। ब्रह्मकुमारी सन्त स्वामी टेऊराम जी महाराज जी, सन्तजी स्वामी मोहनदास जी उदासी जी, निरंकारी बहिनें, श्री आनंदपुर महाराज स्वामी जी, राधास्वामी जी। मैं बहुत खुश नसीब हुं जो मुझे अनेक गुरूओं का सत्संग सुनने और दर्शन करने का मौका मिला। मैं अपने पति डॉ. ईश्वरदास तारानी जी की हृदय से आभारी हूँ। इस पुस्तक को तैयार करने में जो मेरी मदद की है उसके लिये मैं बहुत–बहुत धन्यवाद देती हूँ।

सबसे बडी आभारी हूँ उस परमपिता परमात्मा की, जिनकी दया मेहर से यह पुस्तक सम्पूर्ण होकर संगत तथा पाठकों की सेवा में आ रही है।

ना मैं साहित्यकार हूँ, ना विद्वान, ना लेखक, ना ही मैं कोई भाषा शैली का ज्ञान रखती हूँ। मैंने तो सिर्फ इस पुस्तक में परमात्मा की महिमा को बताने की कोशिश की है। पर मैं जानती हूँ कि परमात्मा की महिमा कोई कर नहीं सकता, उसकी महिमा अपार है।

मेरा यह सौभाग्य होगा कि यह पुस्तक परमपिता परमात्मा की देहरी पर मंजूर हो।

विनीत

रेखा तारानी

प्रकृति
और
परमात्मा

प्रकृति

प्रकृति सभी की माँ है क्योंकि यह अनंत काल से हमारी साथी है। प्रकृति द्वारा हमें दिया गया एक वरदान है क्योंकि यह पृथ्वी पर रहने वाले करोड़ो जीवो की रक्षा करती है।

प्रकृति क्या है

जब प्रकृति कोई काम करना चाहती है तब वो उस कार्य को पूरा करने के लिये, एक प्रतिभाशाली व्यक्ति को जन्म देती है।

प्रकृति के रूप में स्वर्ग हमारे पैरों के नीचे भी है और सिर के ऊपर भी है।

जीवन में कुछ चीजें ऐसी हैं जो आप सिर्फ शांति में सीख सकते हैं और कुछ चीजें ऐसी है जो आप सिर्फ तूफान में सीख सकते है।

ब्रंह्माण्ड का मूल स्त्रोत है प्रकृति

प्रकृति इस समूचे विश्व ब्रह्माण्ड का वह मूल स्त्रोत है जिसमें से सब निकलता है और जिसमें सब विलुप्त भी हो जाता है।

इसी जड़ पदार्थ को प्रकृति कहते हैं जिससे जगत बना है।

प्रकृति के बिना दुनिया की कल्पना पेड़, बादल, हिमपात, हरी घास, फूल सब कुछ जो प्रकृति की देन है। उनके बिना क्या जीवन की कल्पना भी कर सकते हैं, जी नहीं।

अगर प्रकृति ना होती तो हम जीवित ना होते। खासकर पेड़ जो हमें जीने और सांस लेने के लिये ऑक्सीजन देते हैं।

जब कोरोना आया तब हमें ऑक्सीजन की जरूरत पड़ी। तब पता चला कि प्रकृति क्या है। त्राहीमाम त्राहीमाम था।

(हवाई जहाज से ऑक्सीजन आ रहा था)

प्रकृति है क्या ?

हिन्दू धार्मिक ग्रंथो के अनुसार प्रकृति दुर्गा का दूसरा नाम है।

रसरंग में मायथोलॉजी : प्रकृति हमारी ही नहीं, ईश्वर की भी माँ है।

प्रकृति क्या है प्रकृति कितने प्रकार की होती है, प्रकृति के गुण क्या है, इस पर करें मंथना।

प्रकृति की उत्पत्ति कैसे हुई : वैज्ञानिकों के अनुसार असंख्य वर्ष पहले, अंतरिक्ष में एक बहुत बड़ा विस्फोट हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप, पृथ्वी पर प्रकृति की रचना हुई, जिसे बिग बैन का नाम दिया जाता है।

प्रकृति के प्रकार

प्रकृति दो प्रकार की होती है (प्राकृतिक प्रकृति और मानव प्रकृति)

1. **प्राकृतिक प्रकृति :** प्राकृतिक प्रकृति के पाँच तत्व होते हैं, जिन्हें पंच महाभूत कहा जाता है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। वेदों के अनुसार मनुष्य का शरीर इन्हीं पंच तत्वों से बना है।

शरीर जिन पांच तत्वों से बना है। पृथ्वी तत्व से हमारा भौतिक शरीर बनता है। जिन तत्वों धातुओं और अधातुओं से पृथ्वी (धरती) बनी, उन्हीं से हमारे भौतिक शरीर की भी रचना हुई है।

पंचतत्व : पूजा में भगवान सूर्य को आकाश तत्व, भगवान गणेश को जल तत्व, देवी दुर्गा को अग्नि तत्व, भगवान शिव को पृथ्वी तत्व और भगवान विष्णु को वायु तत्व माना गया है।

दुनिया का पहला तत्व

पृथ्वी की सतह पर सबसे प्रचुर तत्व ऑक्सीजन है। आवर्त

सारणी में हाइड्रोजन सबसे हल्का और पहला तत्व है।

वेद भाषा में पंचतत्व : आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को कहा जाता है।

मानव शरीर कितने तत्वों से मिलकर बना है ?

शरीर जिन पाँच तत्वों से बना है, वे है – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश

मानव शरीर में सबसे अधिक 96 प्रतिशत परमाणु, चार महत्वपूर्ण तत्वों – हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन और नाइट्रोजन से बना है।

मानव शरीर में पाए जाने वाले अन्य तत्व हैं– कैल्शियम (हड्डियों के लिए), सल्फर फास्फोरस सोडियम।

2. मानव प्रकृति : मानव प्रकृति में मन बुद्धि और अहंकार शामिल है। सृष्टि के सभी पदार्थ पंचतत्वों से बनते हैं और फिर उसी में मिल जाते हैं। इस सृष्टि का अनुभव करने के लिए मन, बुद्धि और अहंकार की जरूरत होती है। मन, बुद्धि और अहंकार यह तीनों अदृश्य तत्व प्रकृति का ही हिस्सा हैं। प्रकृति माया है, प्रकृति ही परमात्मा है, प्रकृति ईश्वर की ऐसी खूबसूरत रचना है जो रहस्यो से भरपूर है।

प्रकृति का वर्णन वेद, भागवत गीता आदि धर्म शास्त्रों में किया गया है।

गीता के अनुसार प्रकृति क्या है ?

प्रकृति प्रभु का ही एक स्वभाव है इसलिए इसका नाम प्रकृति है। इसी प्रकार परमात्मा का अंश होने से जीव को परमात्मा से भिन्न

सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि यह परमात्मा का स्वरूप है।

परमात्मा का स्वरूप होने पर भी केवल अपरा प्रकृति के साथ सम्बन्ध जोड़ने के कारण इस जीवात्मा को प्रकृति कहा गया है।

(श्रीमद् भागवत गीता)

ईश्वर परा- अपरा दोनो प्रकृतियों का योग है।

भगवान समझाते हैं– ऐसा समझ कि अपरा प्रकृति जड़ और परिवर्तनशील है तथा परा प्रकृति श्रेष्ठ, चेतन और परिवर्तन रहित है।

जिस प्रकृति को लेकर कृष्ण सृष्टि की रचना करते हैं उसका नाम अपरा प्रकृति है, उनका अपना अंश जो जीव है, उसको भगवान (परा प्रकृति) कहते हैं।

कृष्ण ने यहाँ अपनी अपरा प्रकृति में पाँच तत्व के अतिरिक्त मन, बुद्धि, अहंकार को भी शामिल किया है। जीव को इससे भिन्न कहा है।

मन, बुद्धि, अहंकार जीव के नहीं हैं, उन्हें अपना मानना भूल करना है।

सांख्य दर्शन : जगत की निर्मिति पुरूष और प्रकृति के द्वारा होती है। पुरूष अचल है, निराकार है, निर्विकार है, उसी के कारण प्रकृति को शक्ति प्राप्त होती है, जिससे वह जगत का निर्माण कर सकती है।

सांख्य दर्शन में जिसे प्रकृति कहा गया है, उसे ही वेदांत में माया कहा गया है। (प्रकृति और माया एक ही हैं)

माया ऐसा शब्द है जिसे सब कोई जानते हैं और जानने के बाद भी माया को कोई नहीं जानता है।

पंच-तत्व

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्व

मानव शरीर पांच तत्वों से बना है।

1. **पृथ्वी तत्व :** पृथ्वी तत्व से हमारा भौतिक शरीर बनता है। जिन तत्वों धातुओं और अधातुओं से पृथ्वी (धरती) बनी है उन्हीं से हमारे भौतिक शरीर की भी रचना हुई है। आयुर्वेद में शरीर को निरोग और बलशाली बनाने के लिए धातु के भस्मों का प्रयोग किया जाता है।

2. **जल तत्व :** जल तत्व से हमारा मतलब तरलता से है। जितने भी तरल तत्व शरीर में बह रहे हैं वे जल तत्व हैं। चाहे वह पानी हो खून हो या शरीर में बहने वाले सभी तरह के रस और एंजाइम हों। जल तत्व ही शरीर की ऊर्जा और पोषक तत्वों को पूरे शरीर में पहुंचाने का काम करते हैं। इसे आयुर्वेद में (कफ) के नाम से भी जाना जाता है। इसमें असंतुलन शरीर को बीमार बना देता है।

3. **अग्नि तत्व :** ऊर्जा, ऊष्मा, शक्ति और ताप का प्रतीक है। हमारे शरीर में जितनी गर्माहट है सब अग्नि तत्व से है। यही अग्नि तत्व भोजन को पचाकर शरीर को स्वस्थ रखता है। इसे आयुर्वेद में पित्त के नाम से जाना जाता है। ऊष्मा का स्तर ऊपर नीचे होने से शरीर भी बीमार हो जाता है। इसलिए इसका संतुलन जरूरी है।

4. **वायु तत्व :** जिनमें प्राण है। उन सबमें वायु तत्व है। हम सांस के रूप में हवा (ऑक्सीजन) लेते हैं, जिससे हमारा जीवन है।

पतंजलि योग में जितने भी प्राण व उपप्राण बताए गए हैं, वे सब वायु तत्व के कारण ही काम कर रहे हैं। आयुर्वेद में इसे (वात) नाम से जानते हैं।

5. **आकाश तत्व :** आकाश एक ऐसा तत्व है, जिसमें पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु विद्यमान हैं। यह आकाश ही हमारे भीतर आत्मा का वाहक है। आकाश तत्व, स्पेस या खालीपन के लिए जाना जाता है। आकाश ही आत्मा का वाहक है, इसलिए आकाश तत्व को भौतिक रूप से मन कहा गया है।

मानव शरीर

मानव शरीर प्रकृति द्वारा तैयार की गई एक मशीन है जिसके सूक्ष्म संसाधनों व तंत्रों और तत्वों के प्रयोग की सटीक सहज क्रिया के जरिये हम अपनी ऊर्जा को निरंतर गति दे सकते हैं।

प्रकृति और माया

परमात्मा की शक्ति या कहें क्रियाशील शक्ति का नाम महामाया है। परमात्मा की अन्य शक्ति भी है उसका नाम प्रकृति है।

वेदों से लेकर भगवद्गीता और तत्पश्चात शंकराचार्य और अनेक आचार्यो द्वारा माया को समझाने के लिए कुछ शब्दों को लिया गया है। शंकराचार्य इसे अनिर्वचनीय कह गए हैं। इसको बताया नहीं जा सकता है। यह आत्मा से भिन्न नहीं है। अभिन्न नहीं है और उभयात्मिका भी नहीं है।

यह अद्‌भुत है। यह होती भी है, यह नहीं भी होती है। यह दिखाई भी देती है और नहीं भी दिखाई देती है। इसको स्पष्ट करना निश्चय ही कठिन कार्य है।

कबीर दास जी

(माया महा ठगिनी हम जानी)

यह माया है क्या ?

इसका क्या अस्तित्व है ? यह किस प्रकार संसार में व्याप्त है ? हम इसके विषय में जितना भी जानने की कोशिश करते हैं, यह उतनी ही गहन हो जाती है। छोटे से छोटे कीट से लेकर मनुष्य, देवता, ईश्वर, यहां तक की मिट्टी, पत्थर, सूर्य, चन्द्र, तारे, हवा, पानी, अग्नि, आकाश, विचार क्रिया उपकरण, भाग्य, प्रकृति, माया सभी कुछ वही है।

मन बुद्धि अहंकार (मानव प्रकृति)

श्रीमद्‌भागवत गीता में 5 तत्वों के अलावा तीन तत्व और मन, बुद्धि, अहंकार कुछ आठ तत्व बताये गए हैं। मानव शरीर प्रकृति में–

मन तत्व : ये मन है क्या शरीर में इसका क्या कहा स्थान होता है ? मनुष्य की जीवन लीला क्या मन से चलती है ? सारे शरीर में हमारे जो भी संकल्प– विकल्प, इच्छाएँ, कामनाएं हैं, क्या ये सब मन ही का खेल है। क्या हम इसको कोई शरीर का अंग समझते है। ऐसे बहुत सारी बातें उठती हैं। मन ही के अन्दर जब योगी ज्ञान में बैठता है। तब सब ये सोचता है।

हर संतों ने मन के बारे में सत्संगो में अपने–अपने अनुभवों के माध्यम से वचन फरमाते हैं।

मनुष्य का सबसे प्रभावशाली मन है। मनुष्य की जीवन–लीला मन से ही चलती है। भौतिक शरीर में मन कोई अंग नहीं है। यह सूक्ष्म शरीर का अंग है। मन हमेशा क्रियाशील रहता है। स्थूल

शरीर है तब भी सूक्ष्म शरीर है।

जब हम सो जाते हैं, गहरी नींद में होते है, तब हमें कोई अच्छा सपना आता है तब भी जो मन है उसी का ही खेल है यह सब। हमारे शरीर के सारे अंग मन के द्वारा ही संचालित होते हैं। इसलिए मन का प्रबल होना आवश्यक है। हम अपने मन को कैसे वश में कर, हमारा मन कैसे स्वस्थ रहे।

कहावत है ना

मन चंगा तो कठौती में गंगा।

यह जो माया है (प्रकृति है) यह मन को बहुत ही आकर्षित करती है।

मन बहुत ही जल्दी वहा अपना खिंचना शुरू हो जाता है। माया बहुत ही लुभावनी होती है।

अच्छे–अच्छे योगियों का योग भी डांवाडोल हो जाता है। हमारा जो मन है उसको हम कैसे शांत रखें ? इसके लिए मन को कैसे शांत रखें ?

मन को शांत रखने का सबसे उत्तम साधन है ध्यान

ध्यान लगाना : जब हम दिन में थोड़ा टाइम निकालेंगे आधा घंटा भी शांति से बैठेंगे, अपने गुरू का या जिसका भी आप योग के लिए ध्यान करते हैं, उससे मन स्थिर होता चला जाता है।

देखिए ये जो ध्यान की बातें हैं। इसमें पहले दिन ही नहीं लगता। धीरे–धीरे मन को आदत पड़ जाती है। फिर मन शांत होना शुरू हो जाता है।

ध्यान के लिये पहले, आंखें बंद करके अच्छा विचार मन

के अंदर डालें, एकाग्रता बन जाएगी ध्यान लगना शुरू हो जाएगा। मन शांत होता जाएगा। शरीर में नई ऊर्जा का संचार शुरू हो जाएगा।

मन को एकाग्र अवस्था में लाने के लिए हमें अच्छे–अच्छे संत साहित्य का पठन और अध्यात्म सहायक हो सकते हैं।

इससे मन सशक्त होता है। मन के ऊपर मीरा बाई का पद है–

भज मन चरण कँवल अविनाशी। जेताई दीसें धरनि गगन विच तेता सब उठ जासी।

दोहे का भावार्थ : मीराबाई कहती है कि है बावरे मन तूं क्यों भटकता रहता है। तू भगवान के चरणों का ध्यान करा कर। इस संसार में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, उन सभी का एक दिन अंत होना निश्चित है।

मन के ऊपर संत कबीर के दोहे

दोहा : मन के मते न चलिए, मन के मते अनेक
जो मन पर असवार है, सो साधु कोई एक।

अर्थ : संत कबीर दास जी मन के विषय में कहते हैं कि मन के मत में न चलो, क्योंकि मन के अनेको मत हैं जो मन को सदैव अपने अधीन रखता है वह साधु कोई विरला ही होता है।

दोहा : मन के मारे बन गए वन तजि बस्ती माहिं।
कहें कबीर क्या कीजिए, यह मन ठहरे नाहिं।।

अर्थ : संत जी कबीरदास जी मन की चंचलता को रोकने के लिए वन में गए वहां जब मन शांत नहीं हुआ तो फिर से बस्ती में आ गए। गुरू कबीर जी कहते हैं कि जब तक मन शांत नहीं होगा, तब तक तुम क्या आत्म कल्याण करोगे।

दोहा : मन दाता मन लालची मन राजा मन रंक।

जी यह मन गुरु सों मिले, तो गुरु मिले निशंक ।।

अर्थ : यह मन ही लालची उदार– कंजूस बनता है। यदि यह मन निष्कपट होकर गुरु से मिले, तो उसे निसंदेह गुरु पद मिल जा,।

दोहा : मन पंछी तब लग उड़े विषय वासना माहिं।

ज्ञान बाज के झपट में, तब लागि आए नाहि ।।

अर्थ : यह मन रूपी पक्षी विषय– वासनाओं में तभी तक उड़ता है जब तक ज्ञान रूपी बाज के चंगुल में नही आता, अर्थात ज्ञान प्राप्त हो जाने पर मन विषयो की तरफ नही जाता ।

दोहा : माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।

कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।।

अर्थ : संत कबीर दास जी कहते हैं कि कोई व्यक्ति लम्बे समय तक हाथ में लेकर मोती की माला तो घुमाता है पर उसके मन का भाव नहीं बदलता उसके मन की हलचल शांत नहीं होती। कबीर दास जी की ऐसे व्यक्ति को सलाह है कि हाथ की इस माला को फेरना छोड़कर मन के मोतियों को बदलो या फेरो।

मन के ऊपर महापुरुषो ने समय–समय पर अपने विचारों के माध्यम से मन की व्याख्या की है कि मन बड़ा बलवान होता है, मन चंचल होता है, मन मदमस्त हाथी की तरह होता है।

बुद्धि तत्व

सृष्टि के समस्त प्राणियों में मानव का स्थान सर्वोपरि है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर मात्र यही एक ऐसा जीव है, जिसने अपने आपको पर्यावरणीय शक्तियों और परिस्थितियों के अनुरूप और अनुकूल ढालने में सफलता प्राप्त की है। यूं तो कुछ अन्य प्राणी भी बुद्धि से युक्त होते हैं, परन्तु मनुष्य की तुलना में उनका स्तर अत्यन्त भिन्न है।

बुद्धि क्या है : बुद्धि मनुष्य की मानसिक योग्यता है। बुद्धि के लिये प्रयुक्त शब्दों का अर्थ बोध करना, समझना अथवा आन्तरिक चुनाव करना है।

बुद्धि वह तत्व है जो समस्त मानसिक योग्यताओं में सामान्य रूप से निहित रहता है। बुद्धि एक अत्यन्त ही जटिल मानसिक प्रक्रिया है। बुद्धि से तात्पर्य मनुष्य की उस समता से है। जिसके द्वारा वह कर्म की कर्तव्यता तथा ब्रह्य घटनाओं के अर्थ आदि को समझता है।

श्रीमद् भगवत गीता के अनुसार बुद्धि.....

बुद्धि तीन प्रकार की होती है– सात्विकी, राजसी और तामसी।

सात्विकी बुद्धि में कर्तव्य–अकर्तव्य का ठीक–ठीक ज्ञान होता है। राजसी बुद्धि में कर्तव्य अकर्तव्य का ठीक–ठीक ज्ञान नहीं होता और तामसी बुद्धि में सब वस्तुओं का विपरीत ज्ञान होता है।

सात्विक बुद्धि : कामना उत्पन्न होने पर सात्विक बुद्धि भी धुएं से अग्नि के समान ढक जाती है। फिर राजसी और तामसी बुद्धि का तो कहना ही क्या है। सांसरिक इच्छा, उत्पन्न होते ही

पारमार्थिक मार्ग में धुआं हो जाता है। अगर इस अवस्था में सावधानी नहीं हुई तो कामना और अधिक बढ़ जाती है। कामना बढ़ने पर तो पारमार्थिक मार्ग में अंधेरा ही हो जाता है।

श्रीमद् भगवद्गीता

तत्व के यथार्थ ज्ञान का नाम बुद्धि है। बुद्धि किसी भी प्राणी को दिया परमात्मा का सबसे बड़ा वरदान है। बुद्धि के कारण ही मनुष्य अन्य जीवों से श्रेष्ठ है और बुद्धि ही परमात्मा को पाने का एक मात्र अवलम्ब है।

कहा गया है ना कि जिसके पास बुद्धि नही हैं, कोई भी शास्त्र उसका कोई भला नहीं कर सकते हैं।

नेत्रहीन व्यक्ति का दर्पण क्या कर सकता है। ज्ञानवान ही बुद्धि द्वारा कर्मफल को त्याग करने में सक्षम होते है। यथार्थ ज्ञान का नाम बुद्धि है। बुद्धि ही ऐसा माध्यम है, जिसमें अनासक्त होकर शरीर से कर्म किये जा सकते।

वेद और उपनिषद् के भिन्न–भिन्न सिद्धान्तों से उपलब्ध बुद्धि द्वारा समाधि में स्थित होने पर मनुष्य समता योग को प्राप्त होता है।

बुद्धि के स्थिर हो जाने पर मनुष्य का मन दुख में उद्विग्नता को प्राप्त नहीं होता और सुखों से उसे कोई प्रीति नहीं होती है।

उसका राग, क्रोध, भय समाप्त हो जाता है। वह अनासक्त हो जाता है। जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को सब ओर से समेट कर अन्दर कर लेता है, वैसे ही जब मनुष्य बुद्धि के द्वारा इन्द्रियों को सब विषयों से समेट लेता हैं। तब स्थितिप्रज्ञ कहा जाता है। जिस

मनुष्य की बुद्धि स्थिर नहीं है वह किसी भी इन्द्रिय को रोककर उसके विषय को हठपूर्वक ग्रहण नहीं करने से विषय निवृत हो सकता है।

बुद्धि के द्वारा जिस पुरुष का मन उसके वश में आ चुका है तथा बुद्धि से सभी इन्द्रियां जिसने वश में कर ली हैं उसे न किसी से राग होता है न किसी से द्वेष अर्थात जिसकी आसक्ति का नाश समूल रूप से हो गया है, ऐसा पुरुष संसार के समस्त विषयों को भोगता हुआ भी आत्मानन्द को प्राप्त होता है।

जो मनुष्य इन्द्रियों का दास है अर्थात जो कामनाओं का दास है और जिसका मन उसके वश में नहीं है, अर्थात नित नई कामनाएं करता है उस मनुष्य की बुद्धि निश्चयात्मक नहीं होती है, वह भटकती रहती है।

एक बुद्धि न होनेसे अयुक्त मनुष्य के अन्त:करण में आत्म भावना भी नहीं होती।

जो मनुष्य संकल्पहीन होते हैं उनकी बुद्धि अनेक शाखाओं में विभक्त रहती है।

बुद्धि का स्वरूप क्या है? : बुद्धि आत्मा का गुण है, क्योंकि आत्मा को ही मन तथा बाहेन्द्रियों के द्वारा अर्थ का प्रकाश अर्थात ज्ञान होता है। सांख्य में बुद्धि को महत्व कहा गया है। वैशेषिक यह मानते हैं कि बुद्धि ज्ञान का पर्याय है। बुद्धि का मानस प्रत्यक्ष होता है।

बुद्धि के प्रमुख दो भेद हैं- विद्या और अविद्या। विश्वनाथ पंचानन ने विद्या को प्रभा और अविद्या को, अप्रभा कहा है।

अन्नभट ने सब प्रकार के व्यवहार हेतु को बुद्धि कहा है।

हमारे शरीर में सूक्ष्म अंत: करण होता है, जिसे हम हृदय भी कहते हैं। यह मन, बुद्धि और अहंकार से निर्मित होता है। इस सूक्ष्म शरीर में बुद्धि मन से श्रेष्ठ है जो निर्णय लेती है। जबकि मन में इच्छाएं उत्पन्न होती है और यह बुद्धि द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसार मोह के विषयों में अनुरक्त हो जाता है।

हमें अपनी बुद्धि को उचित ज्ञान के साथ पोषित करना चाहिए और उसका प्रयोग मन को उचित दिशा की और ले जाने का मार्गदर्शन प्रदान करने में करना चाहिए।

गीता का कहना है कि मनुष्य को शब्दों के ऊपर उठना है बुद्धि का स्थान, मन के ऊपर, है। यदि हम मन की सीमा को जानकर उसके ऊपर उठ सकें तो हम बुद्धि की अवस्था पर पहुंच सकते हैं।

संसार प्रकृति के आठ जड़ तत्वों से मिलकर बना है। सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति भगवान की दो प्रकार से विभक्त प्रकृतियों द्वारा होती है। परा–अपरा प्रकृति।

परा प्रकृति अपरा प्रकृति क्या है।

अपरा प्रकृति : अपरा प्रकृति में आठ तत्व हैं। पंच महाभूत के अलावा मन, बुद्धि एवं अहंकार।

परा प्रकृति : परा प्रकृति चेतन तत्व है, जिसमें समस्त जीवन व्यक्त होता है। परा प्रकृति, अपरा प्रकृति के परिवर्तित, विभिन्न रूप, देह आदि धारण किए जाते हैं। परा प्रकृति ईश्वरीय तत्व है। जीव अपरा प्रकृति को परा प्रकृति से धारण करते है।

अपरा प्रकृति में पदार्थ स्थूल एवं सूक्ष्म यथा मन, बुद्धि अहंकार शामिल हैं। जीव ईश्वर का अंश है। ईश्वर परा अपरा दोनों प्रकृतियों का योग है।

भगवान समझाते हैं– ऐसा समझ कि सम्पूर्ण भूत दोनों प्रकृतियों से ही उत्पन्न होने वाले हैं और भगवान ही सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति तथा प्रलय का कारण है।

अपरा प्रकृति जड़ और परिवर्तनशील है। परा प्रकृति श्रेष्ठ, चेतन और परिवर्तन रहित है। प्रत्येक मनुष्य का भिन्न–भिन्न स्वभाव होता है। जैसे स्वभाव को मनुष्य से अलग सिद्ध नहीं कर सकते। ऐसे ही परमात्मा की प्रकृति को परमात्मा से अलग (स्वतंत्र) सिद्ध नहीं कर सकते। यह प्रकृति प्रभु का ही एक स्वभाव है इसलिए इसका नाम प्रकृति है।

इसी प्रकार परमात्मा का अंश होने से जीव को परमात्मा से भिन्न सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि यह परमात्मा का स्वरूप है।

परमात्मा का स्वरूप होने पर भी केवल अपरा प्रकृति के साथ सम्बन्ध जोड़ने के कारण इस जीवात्मा को प्रकृति कहा गया है। हे अर्जुन ! तुम बड़े शक्तिशाली हो इसलिए तुम अपरा और परा प्रकृति के भेद को समझने में समर्थ हो।

केवल इस परा प्रकृति- जीव ने इसको जगत् रूप से धारण कर रखा है अर्थात जीव इस संसार की स्वतंत्र सत्ता मानकर अपने सुख के लिये इसका उपयोग करने लग गया। इसी से जीव का बंधन हुआ है। अगर जीव संसार की स्वतंत्र सत्ता न मानकर इसको केवल भगवत्स्वरूप ही माने तो उसका जन्म–मरण रूप बंधन मिट जाएगा। भगवान की परा प्रकृति होकर भी जीवात्मा ने इस दृश्यमान जगत् को जो कि अपरा, प्रकृति है, धारण कर रखा है। इस सुखासक्ति से ही जीव ने जगत को जगत–रूप से धारण कर रखा है। सुखासक्ति के कारण ही वह इस जगत को भगवत्स्वरूप से

नहीं देख सकता।

पर प्रकृति ने अपरा प्रकृति को धारण कर रखा है। अपरा जड़ है उससे भिन्न अपनी परा प्रकृति को भगवान बताते हैं कि वह परा प्रकृति जीवरूप अर्थात चेतन रूप है, जिसके कारण ही शरीर मन और बुद्धि अपने अपने कार्य इस प्रकार करते है, मानो वे स्वयं ही चेतन हो चेतन्य के बिना हमें न बाह्य स्थूल जगत् का और न आन्तरिक सूक्ष्म विचार रूप जगत् का ही अनुभव और ज्ञान हो सकता है।

परा प्रकृति जगत् का आधार है। इस प्रकार बाह्य विषय भावनाएं और विचार ये सब जगत् ही हैं। यह सम्पूर्ण जगत चेतन स्वरूप परा प्रकृति के द्वारा धारण किया जाता है।

जीव ईश्वर का अंश है। ईश्वर परा अपरा दोनो प्रकृतियों का योग है। भगवान समझाते हैं – ऐसा समझ कि सम्पूर्ण भूत दोनो प्रकृतियों से ही उत्पन्न होने वाले है और भगवान ही संपूर्ण जगत की उत्पत्ति तथा प्रलय का कारण है। इस गुढ़ तत्व को जानने – मानने वाला ही भगवान का भक्त है।

इस दृश्य जगत में कार्य करने की तब तक शक्ति नहीं आती जब तक परा शक्ति अर्थात जीव द्वारा यह गतिशील नहीं, बनाया जाता। अत: जीव सदैव भगवान द्वारा नियन्त्रित होते हैं। जीवों का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है।

अहंकार तत्व

अहंकार तत्व क्या है?

भगवान श्री कृष्ण कहते है –

मेरी यह आठ तत्वों वाली जड़ प्रकृति (जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार) ही समस्त वस्तुओं को उत्पन्न करने वाली माता है और मैं ही ब्रह्म रूप में चेतन रूपी बीज को स्थापित करता हूँ। इस जड़ चेतन के संयोग से ही सभी चर–अचर प्राणियों का जन्म सम्भव होता है। संसार प्रकृति के आठ जड़ तत्वों से मिलकर बना है।

स्थूल तत्व : जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी और आकाश।

दिव्य तत्व : बुद्धि, मन और अहंकार।

हमारे स्वयं के दो रूप होते है –

एक बाहरी दिखावटी : जिसे स्थूल शरीर कहते हैं।

दूसरा आन्तरिक : वास्तविक दिव्य रूप जिसे जीव कहते है।

बाहरी शरीर रूप स्थूल तत्वों के द्वारा निर्मित होता है और हमारा आन्तरिक जीव रूप दिव्य तत्वों के द्वारा निर्मित होता है।

जीव को अपना आध्यात्मिक उत्थान करने के लिए सबसे पहले बुद्धि तत्व के द्वारा अहंकार तत्व को जानना होता है।

(अहंकार = अहं + आकार = स्वयं का रूप)

स्वयं के रूप को ही अहंकार कहते हैं।

अहंकार दो प्रकार का होता है।

शरीर को अपना वास्तविक रूप समझना मिथ्या अहंकार कहलाता

है। जीव को अपना वास्तविक रूप समझना शाश्वत अहंकार कहलाता है। जीव मिथ्या अहंकार के कारण ही स्थूल शरीर धारण करके बार–बार जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। जब जीव का मिथ्या अहंकार मिटकर शाश्वत अहंकार में परिवर्तित हो जाता है, तभी जीव मोक्ष के मार्ग पर चलने लगता है।

मिथ्या अहंकार के मिट जाने पर ही जीव की मुक्ति संभव होती है।

अहंकार : यह वह गुण है जिससे एक जीव अपने होने का आभास होता है। उसके अपने *मैं* का बोध होता है। अगर जीव से अहंकार हटा दिया जाए तो जीव को यह मालूम करना मुश्किल हो जायेगा कि वह क्या है और कौन है।

अहंकार अगर सत्य हो, वह आत्मज्ञान होता है लेकिन यह अहंकार अगर असत्य हो तो भयंकर हो जाता है। अहंकार व्यक्ति के अज्ञान और मूर्खता का परिचायक है।

मनुष्य में अपने धन, बल और यौवन, जाति , कुल सौन्दर्य कला, सद्‌गुणों और सत्ता का नशा होता है। इसे ही अहंकार दर्प, दम्भ, घमण्ड या अभिमान कहते है। अहंकार ही माया है।

जब तक हमारे मन में अहंकार है हमें ईश्वर दिखाई नहीं देता। अहंकार ही माया है जिसका पर्दा हटते ही सब प्रकाशित हो जाता है। (स्वामी रामकृष्ण परमहंस का चिंतन)

स्थूल, सुक्ष्म एवं कारण शरीर

स्थूल शरीर : पंच महाभूतों से बने हुए शरीर को स्थूल शरीर कहते हैं। शरीर को माध्यम बनाकर क्रियाशील रहने वाले, सूक्ष्म शरीर को जीव कहते हैं।

स्थूल शरीर के नष्ट होने के बाद भी यह सूक्ष्म शरीर नष्ट नहीं होता, क्योंकि यह सनातन है। यह जीव मेरा सनातन अंश है, वहीं इस प्रकृति में स्थित मन और पाँचो इन्द्रियों को आकर्षित करता है। यह स्वर्ग नरक अथवा विभिन्न योनियों में भ्रमण करता है।

कारण शरीर को आत्मा कहते हैं जो कि सूक्ष्म और स्थूल शरीरों का कारण हैं। जीव का सांस के द्वारा आत्मा से संपर्क बना रहता है, जिससे यह सूक्ष्म जीव शरीर में रहते हुए स्थूल शरीर को क्रियाशील रखता है। स्थूल शरीर यानी इन्द्रिय शरीर दिखाई देता है सूक्ष्म शरीर वह है जिसके कारण स्थूल सक्रिय है। स्थूल शरीर को हम देख सकते है लेकिन सूक्ष्म सर्वसाधारण को दिखाई नहीं देता। इसके लिए ज्ञानचक्षु आँख चाहिए। सूक्ष्म को हम जान सकते हैं। महसूस कर सकते है। अनुभव कर सकते हैं। पर देख नहीं सकते। स्थूल सूक्ष्म और कारण ऐसे मनुष्य के तीन शरीर होते है। इन तीनों शरीरो में हम सूक्ष्म और कारण शरीर को नहीं देख सकते। मनुष्य का स्थूल शरीर चल फिर बोल रहा है। सक्रिय है। कार्यो को कर रहा है। मतलब वह सूक्ष्म और कारण शरीर से जुड़ा हुआ है।

स्थूल शरीर के अन्दर ही सूक्ष्म शरीर रहता है। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर के रहने का घर है, ऐसा भी हम कह सकते है। जैसे गीता में भगवान ने इस स्थूल शरीर को रथ कहा है। यह केवल रथ है इसे चलाने वाला सारथी जो है वह सूक्ष्म शरीर है। स्थूल में जो चेतनता है वह सूक्ष्म के कारण ही है। स्थूल शरीर मरता है पर सूक्ष्म शरीर नहीं मरता। स्थूल शरीर व्यायाम् से उचित आहार से स्वस्थ और बलवान होता है और सूक्ष्म शरीर ध्यान, योग परमात्मा के चिंतन मनन से, सत्संग सेवा से स्वस्थ होता है।

आत्मयोग में रहने वाले योगी आत्म साक्षात्कारी महापुरुष स्थूल और सूक्ष्म शरीर को जीवन रहते ही अलग कर सकते हैं।

सूक्ष्म शरीर का स्वरूप फैला है।

सूक्ष्म शरीर 5 ज्ञानेन्द्रियों, 5 कर्मेन्द्रियों, 5 प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार चित्त अविद्या, कामना, कर्म व संस्कार का बना हुआ है। आत्मा का प्रवेश होने पर जीव कहलाता है। यही जीव 84 लाख योनियों में आवगमन करता है।

स्थूल उसे ही कहा जाएगा जिसका अनुभव, हमारी ज्ञानेन्द्रियों से यानि की आंख, कान, नाक जिवा व त्वचा से होता है।

सूक्ष्म शरीर के 4 मुख्य घटक होते हैं- चित्त, बुद्धि, मानस और अहंकार।

सूक्ष्म देह क्या है? मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच प्राण पाँच सूक्ष्म भूत यह सूक्ष्म शरीर सृष्टि के प्रारम्भ में परमपिता परमात्मा आत्मा को प्रदान करता है।

कारण शरीर : मूल वृत्ति को कारण शरीर कहते हैं। मन स्थूल सिरे को कहते हैं। मन का बीज होता है कारण शरीर।

कारण : क्योंकि उसी के कारण मन है, शरीर है और पूरा ब्रह्मण्ड, संसार है। वह मूल वृत्ति है। वह बीज है तो जिस बीज से मन निकला उस बीज का नाम कारण है। कारण शरीर मन को कह देते हैं। सूक्ष्म शरीर और मन यदि तना है तो शाखाओं, प्रशाखओं-पत्तों के पूरे विस्तार का नाम होता है। शरीर और संसार स्थूल।

इन्द्रियाँ

इन्द्रियाँ क्या है?

ये पाँच महाभूत है। फिर मिथ्या अहंकार, बुद्धि और प्रकृति के तीनों गुणों की अव्यक्त अवस्था है। फिर ज्ञान प्राप्त करने के लिए पाँच इन्द्रियाँ हैं- आँख, कान, नाक, जीभ और स्पर्श।

फिर पाँच कर्मेन्द्रियाँ, आवाज, पैर, हाथ, गुदा और गुप्तांग। इन्द्रियाँ ठीक काम करती है या नहीं इसको भी बुद्धि जानती है बुद्धि का स्वामी, अहं है इसलिए कहता है मेरी बुद्धि।

जड़ अंश से तादात्मय होने के कारण वह चेतन में रहता प्रतीत होता है। बाह्य जगत की वस्तुओं की तुलना में हमारे लिए अपनी इन्द्रियाँ अधिक महत्व की होती हैं। कर्मेन्द्रियों की अपेक्षा, ज्ञानेन्द्रियाँ अधिक श्रेष्ठ और सूक्ष्म है। मन को इन्द्रियों से सूक्ष्म और परे कहा गया है। बुद्धि को मन से श्रेष्ठतर कहा गया है। जो बुद्धि से भी परे तत्व है, उसे ही आत्मा कहते हैं। बुद्धिवृत्तियों को प्रकाशित करने वाला चैतन्य बुद्धि से भी सूक्ष्म होना चाहिए। इस चैतन्य स्वरूप आत्मा के परे और कुछ नहीं है।

प्रकृति का स्वरूप

यह जगत जिसमें बना उसका नाम प्रकृति है। इसका अन्य नाम माया है। यह संसार का सबसे छोटा (स्मालेस्ट पार्टिकल) कण है अर्थात पूरे जगत का मूल है (रॉ मैटेरियल) जिसे सत्व रजस तमस् कहते है। प्रकृति स्वयं कार्य नहीं कर सकती चेतन के द्वारा सब तरह से गति करती है। परिणामी अर्थात परिवर्तनशील है। स्वयं का बोध नही सत्व रजस् तमस् मूल कणों से ईश्वर के द्वारा जगत के रूप में प्रकट होती है।

जड़ जगत अर्थात सूर्य चंद्र भूमि नक्षत्र वृक्ष वनस्पति आदि और चींटी से लेकर मनुष्य और मनुष्य से लेकर हाथी व समुन्द्री व्हेल समस्त प्राणियों के शरीरों का मूल उपादान कारण प्रकृति है जो अनादि है। यह सुक्ष्म अनादि नित्य और परमाणु रूप है। यह विभिन्न और

असंख्य है। इनके पारस्परिक संयोग-विभाग के द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश पंचभूत उत्पन्न होते है। यह प्रकृति त्रिगुणात्मक अर्थात सत्व, रजत्, तमस् गुण वाली है। इन गुणों से युक्त होने के कारण ही प्रकृति को त्रिगुणात्मक कहते हैं।

सूक्ष्म होने से यह इन्द्रियों से दिखाई नहीं देती। इसलिए अव्यक्त है, अदृश्य है। पृथ्वी आदि पांच स्थूल भूत रूप द्वारा व्यक्त होते है। इस प्रकार यह सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप धारण करती है। इसके क्रमिक विकास का अंतिम परिणाम यह स्थूल सृष्टि है। यह दृश्य जगत है।

सांख्य दर्शन : सत्व, रजस्, तमस् तीन वस्तु मिलकर जो एक संधात है उसका नाम प्रकृति है।

मूल प्रकृति : इसमें तीनों गुण अपनी साम्यावस्था में स्थित होंगे। ये तीन गुण, क्रमशः सत्व, रजस् और तमस् कहे गए हैं। इनकी साम्यावस्था ही मूल प्रकृति कही जाती है। संसार की बीज शक्ति या वह आदिम सत्ता जिसका परिणाम तथा विकास यह सारी सृष्टि है।

सत्व रज और तम

तीन गुण, क्रमशः रजगुण, सतगुण और तमगुण हैं जो कि ब्रह्माजी, विष्णुजी, और शिवजी से जुड़े हैं।

कृष्ण कहते हैं- हे अर्जुन सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण- ये प्रकृति से उत्पन्न तीनो गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बांधते हैं।

है निष्पाप! उन तीनों गुणों में सत्वगुण निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और विकार रहित है। वह सुख के सम्बंध से ज्ञान के सम्बन्ध से अर्थात उनके अभिमान से बांधता है।

हे अर्जुन! राग रूप रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न जान। वह इस जीवात्मा को कर्मो और उनके फल के संबंध से बांधता है।

हे अर्जुन! सब देहाभिमानियों को मोहित करने वाले तमोगुण को तो अज्ञान से उत्पन्न जान वह इस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बाँधता है।

इस प्रकार सत्व रज और तम इन तीनो गुणों का स्वरूप और उनके द्वारा जीवात्मा के बांधे जाने का प्रकार है।

ये तीनों गुणो का किस तरह अपना प्रभाव होता है प्रकृति में।

हे अर्जुन ! सत्वगुण सुख में लगता है। रजो गुण कर्म में।

तमो गुण तो ज्ञान को ढककर प्रमाद में। ये तीनों गुण समय समय पर अपने -अपने कार्य में जीवों के द्वारा सम्पन्न होते हैं।

ये तीनों जो प्रकृति के गुण हैं अगर कोई एक गुण की अधिकता होती है तो दूसरे जो 2 गुण बाकी हैं वो

दबाकर ही पहला गुण आगे होता है। इससे 2 गुण दब जाते हैं।

अब ये तीनों गुण किस तरह शरीर में कम ज्यादा होते हैं-

अन्तःकरण और इन्द्रियों में चेतना और विवेक शक्ति उत्पन्न होती है उस समय ऐसा माने कि सत्वगुण बड़ा होता है।

हे अर्जुन ! रजो गुण के बढ़ने पर लोभ, स्वार्थ, बुद्धि से कर्मो का सकाम भाव से आरम्भ होता है।

हे अर्जुन ! तमो गुण के बढ़ने पर, अन्तःकरण और इन्द्रियों में अप्रकाश, व्यर्थ चेष्टा और निद्रादि, अन्तःकरण की मोहिनी वृत्तियाँ हैं।

सत्व, रज, तम तीनों गुणों की वृद्धि से भिन्न-भिन्न 7 फल बताए गए हैं। कमी किसी गुण की और कमी, किसी गुण की वृद्धि क्यों होती है। श्री कृष्ण कहते हैं- श्रेष्ठ कर्म का तो सात्विक अर्थात सुख ज्ञान और वैराग्यादि निर्मल फल कहा है।

राजस कर्म का फल दु:ख एवं तामस कर्म का फल अज्ञान कहा है। सत्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है। रजो गुण से लोभ। तमो गुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है।

सत्वगुण स्थित पुरुष स्वर्गादि अन्य लोको को जाते है। रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्य में अर्थात मनुष्यलोक में रहते है। तमोगुण के कार्यरूप निद्रा प्रमाद

और आलस्यादि में स्थित तामस पुरूष अधोगति को अर्थात कीट पशु आदि नीच योनियों को प्राप्त होते है।

अभिप्राय: तीनों गुण सत्व, रज, तम भिन्न हैं ये तीनों गुण प्रकृति के कार्य हैं। समस्त जड़ पदार्थ इन्ही तीनो का विस्तार हैं।

भगवान की प्रकृति

श्री कृष्ण श्रीमद् भगवत गीता में अर्जुन से कहते है कि हे अर्जुन ! कल्प के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं। अर्थात प्रकृति में लय होते है और कल्प के आदि में उनको मैं फिर रचता हूँ।

कैसे कि अपनी त्रिगुणमयी माया को अंगीकार करके, स्वभाव के वश से परतंत्र हुए इस सम्पूर्ण भूत समुदाय को बारम्बार उनके कर्मो के अनुसार रचता हूँ।

हे अर्जुन! उन कर्मों में आसक्ति रहित और उदासीन को वे कर्म नहीं बाँधते हैं (मुक्त परमात्मा को)।

हे अर्जुन! यह जो मेरी माया है चराचर सहित स्वर्ग जगत को रचती है और यह जो संसार है ना आवागमन चक्र में घूमता है।

श्री कृष्ण जी अर्जुन को जो कि गीता में है बता रहे है कि हे अर्जुन! मैं ही इस सम्पूर्ण जगत का धारण-पोषण करने वाला, फल को देने वाला पिता-माता और पितामह हूँ।

परमपिता परमात्मा की प्रकृति का कोई अन्त नहीं है। हम उसको कोई आकार-प्रकार में नही बया कर सकते है।

जो कुछ दृश्यमात्र संसार है जो सब भगवान की माया है।

भगवान श्रीकृष्ण बताते हैं कि उनके पहले चार सनकादिक, मन, बुद्धि चित्त और अहंकार थे ये सब मेरे ही संकल्प से पैदा हुए हैं। ये दुनिया मेरे ही संकल्प से बनी

है। मैं ही सबका, जन्मदाता हूँ। सबके अंदर चेतना के रूप में विराजमान हूँ। मेरी किसी भी शक्ति का अन्त और शुरुआत नहीं है।

सृष्टि की रचना

श्री भागवत गीता में भगवान कहते हैं- मैं ही सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करता हूँ। मैं ही उसका मूल कारण हूँ।

वह पूर्ण ब्रह्म अपने एक अंश से जगत को धारण करता है, परी स्वयं अचलरूप से स्थित रहता है। इसी प्रकार भगवान अंशयुक्त होने पर भी पूर्ण है।

सृष्टि क्या है ?

सम्पूर्ण सृष्टि का सृजनकर्ता परमपिता परमेश्वर है। अनन्त निर्विकार अनादि, अनुपम, निराकार, सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान, अजन्मा, सच्चिदानन्द स्वरूप आदि गुण युक्त परमेश्वर ही इस सृष्टि के रचयिता है।

एक ही परमात्मा अनेक नाम रूप धारणकर सृष्टि की रचना करते हैं।

सृष्टि अनादि है, सनातन है, इसका न आदि है, न अंत है।

परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो के एकमात्र ईश्वर है जो प्रकृति से परे है। उनका विग्रह सत् चित और आनन्दमय है।

ब्रह्मा, शंकर महाविराट और शुद्रविराट, सभी उन परमब्रह्म परमात्मा का अंश है।

प्रकृति भी उन्ही का अंश कही गई है। जैसे स्वर्णकार स्वर्ण के बिना आभूषण नही बना सकता तथा कुम्हार मिट्टी के बिना घड़ा बनाने में असमर्थ है, उसी प्रकार परमात्मा को प्रकृति का सहयोग न मिले तो सृष्टि नहीं कर सकते।

सृष्टि के अवसर पर परब्रह्म परमात्मा दो रूपो में प्रकट हुए- प्रकृति और पुरुष।

वही प्रकृति परब्रह्म में लीन रहने वाली उनकी सनातनी माया है।

सृष्टि की रचना

गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि इस सृष्टि की रचना मूल रूप से तीन गुणों से हुई है। ये तीन गुण सत्व राजस और तमस है और मैं ही ब्रह्म (आत्मा) रूप में चेतन रूपी बीज को स्थापित करता हूँ।

मूल प्रकृति ही संसार की समस्त वस्तुओं को उत्पन्न करने वाली है।

इस जड़ चेतन के संयोग से ही सभी चर-अचर प्राणियों की उत्पत्ति होती है। साथ ही समस्त योनियों में जो भी शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं, उन सभी को धारण करने वाली आत्मा रूपी बीज को स्थापित करने वाला पिता हूँ। सात्विक, राजसिक और तामसिक यह तीनों गुण भौतिक प्रकृति से उत्पन्न होते है। प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणों के कारण ही अविनाशी आत्मा, शरीर से बंध जाती है। पुरुष प्रकृति से उत्पन्न तीनो गुणों को भोगता है और

इन गुणों का साथ ही इस जीवात्मा को अच्छी बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण बनता है।

श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है कि हे कौन्तेय सब भूत कल्पों के अंत में मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं। कल्प के प्रारम्भ में उनको मैं पुन: उत्पन्न करता हूँ।

व्याख्या : उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक सृष्टि अनेक कल्पों में बटी है। जब अंतिम कल्प होगा तब प्रलयकाल में सभी भूत और जो चराचर जगत है वे सभी अपनी मूल प्रकृति में ही लीन हो जाएंगे।

क्योंकि सृष्टि मूल प्रकृति से ही उत्पन्न होती है और प्रलयकाल में वह फिर से मूल प्रकृति को ही प्राप्त हो जाती है। प्रलय हो जाने के बाद फिर जब सृष्टि का निर्माण होना होगा तब उसी मूल प्रकृति से फिर से सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार यह सिलसिला अनंतकाल तक चलता ही रहता है।

जैसे बीज में पूरा पेड़ छुपा होता है ऐसे ही मूल प्रकृति में पूरा यूनिवर्स समय होता है।

यह मूल प्रकृति ओर कुछ नहीं, बल्कि परमात्मा की ही शक्ति है।

जैसे : सर्वत्र विचरण करने वाला, महान वायु सदा आकाश में ही स्थित रहता है, वैसे ही सभी भूत मुझमें ही स्थित है।

ब्रह्म आकाश से अति परे और सूक्ष्म है लेकिन ब्रह्म को समझने के लिए आकाश एक अच्छा उदाहरण है। जैसे आकाश, पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है ऐसे ही ब्रह्म भी व्याप्त है। इसी आकाश में वायु फैला हुआ है जो सब जगह घूमता रहता है। जैसे आकाश के अंदर वायु विचरण करता है ऐसे ही ब्रह्म के अन्दर पाँच महाभूतों से बने सभी भूत स्थित होते हैं।

जैसे : वायु, आकाश से बाहर नहीं जा सकता ऐसे ही भूत भी ब्रह्म से बाहर नहीं जा सकते। अत: जो भी कुछ प्रकट या अप्रकट ब्रह्माण्ड में विद्यमान है वो सभी ब्रह्म में ही निहित है, उससे बाहर नहीं।

इस सृष्टि की उत्पत्ति क्या है। प्रकृति में विस्मयकारी घटनाओं को देखते समय, यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि इन ब्रह्मांडीय अभिव्यक्तियों के पीछे एक शक्ति है। इस प्रकार हम सर्वोच्च भगवान की स्थिति के बारे में जान सकते हैं, जो ईश्वर है। ईश्वर न केवल स्त्रोत है बल्कि संपूर्ण सृष्टि का पालनकर्ता और संहारक भी है।

सृष्टि रचना

प्रलयकाल में भगवान ने दिशाओं आकाश के साथ सम्पूर्ण जगत को शून्यमय देखा। न कहीं जल, न वायु, न ही कोई जीव-जन्तु, न वृक्ष, न पर्वत, न समुद्र, बस घोर अंधकार ही अंधकार। सारा आकाश वायु से रहित और घोर अंधकार से भरा विकृताकार दिखाई दे रहा था। तब

परमात्मा में स्वेच्छामय सृष्टि की इच्छा हुई और उन्होने स्वेच्छा से ही सृष्टि रचना आरम्भ की।

सबसे पहले श्रीकृष्ण के दक्षिण भाग से जगत के कारण रूप तीन गुण प्रकट हुए। उन गुणों से महत्व, अंहकार पाँच तन्मात्राएं रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द प्रकट हुए। इसके बाद साक्षात भगवान नारायण का प्रादुर्भाव हुआ। जो शंक, चक्र, गधा, पद्मधारी चतुर्भुज वनमाला से विभूषित व पीताम्बरधारी प्रकट हुए। इसके बाद श्रीकृष्ण के वामभाग से पंचमुखी, त्रिनेत्रवाले जटाजूटधारी हाथों में त्रिशूल व जपमाला लिए बागम्भर पहने भगवान शिव प्रकट हुए। उनका शरीर भस्म से भूषित था और उन्होने मस्तक पर चन्द्रमा को धारण कर रखा था। सर्पों के उन्होंने आभूषण पहन रखे थे। उन्होने श्रीकृष्ण को प्रणाम करते हुए कहा- जो विश्व को ईश्वरों के भी ईश्वर, विश्व के कारणों के भी कारण है, जो तेजस्वरूप तेज के दाता और समस्त तेजस्वियों में श्रेष्ठ है उन परमात्मा की मैं वन्दना करता हूँ।

तत्पश्चात श्रीकृष्ण के नाभिकनाल से ब्रह्माजी प्रकटहुए। उनके श्वेतवस्त्र व केश थे। कमण्डलधारी चार मुख वाले वेदों को धारण व प्रकट करने वाले है वे ही विधाता है। उन्होंने चारों मुखों से भगवान की स्तुति करते हुए कहा- जो अव्यक्त और व्यक्तरूप है तथा गोपवेश धारण करते हैं, उन गोविन्द, श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ।

इसके बाद परमात्मा के वक्ष स्थल से श्वेतवर्ण के जटाधारी (धर्म) प्रकट हुए। वह सबके साक्षी व सबके समस्त कर्मों के दृष्टा थे।

उन्होने भगवान की स्तुति करते हुए कहा जो सबको अपनी और आकृष्ट करने वाले सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, जो परमात्मा एवं ईश्वर है उन भगवान श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ।

फिर धर्म के ही वामभाग से मूर्ति नामक कन्या प्रकट हुई। तदन्तर परमात्मा के मुख से शुक्ल वर्ण वीणा पुस्तक धारिणी वाणी की अधिष्ठात्री शान्तरूपिणी सरस्वती प्रकट हुई।

उन्होने भगवान की स्तुति करते हुए कहा- जो रासमण्डल के मध्यभाग मे विराजमान है मैं उनको प्रणाम करती हूँ। फिर परमात्मा के मन से गौरववर्षा सम्पूर्ण सम्पत्तियां प्रदान करने वाली स्वर्गलक्ष्मी प्रकट हुई। उन्होने भगवान को प्रणाम करते हुए कहा- जो सत्यस्वरूप सत्य के मूल है उनको मैं प्रणाम करती हूँ। (दुर्गा शक्ति)

फिर परमात्मा की बुद्धि से मूल प्रकृति का प्रादुर्भाव हुआ। वे लाल रंग की साड़ी पहने हुए थी व रत्नाभरण से भूषित व सहस्त्रों भुजाओं वाली थी। वे निद्रा, तृष्णा क्षुधा पिपासा (भूख-प्यास), दया, श्रद्धा, बुद्धि, लज्जा तुष्टि कान्ति और क्षमा आदि देवियों की व समस्त शक्तियों की

अधिष्ठात्री देवी है। उन्हीं को दुर्गा कहा गया है। परमात्मा की जिह्वा के अग्रभाग से सफेद साडी व आभूषण पहने हाथ में जपमाला लिए सावित्री देवी प्रकट हुई।

फिर परमात्मा के मानस से सुवर्ण के समान कांतिमय पुष्पमय धनुष व पांच बाण लिए कामियों के मन को मथने वाले मन्मथ (कामदेव) प्रकट हुए।

कामदेव के वामभाग से परम सुन्दरी रति प्रकट हुई। कामदेव के बाणों से ब्रह्मा जी की कामाग्नि प्रदीप्त हो गई जिससे अग्नि प्रकट हुई। उस अग्नि को शान्त करने के लिए भगवान ने जल की रचना की और अपने मुख से जल की एक-एक बूंद गिराने लगे। तभी से जल के द्वारा आग बुझने लगी। उस बिन्दुमात्र जल से सारे जगत में जल प्रकट हो गया और उसी के जल के व सभी जल जन्तुओं के देवता (वरुण देव) प्रकट हुए और अग्नि से अग्नि देव प्रकट हुए। अग्नि देव के वामभाग से उनकी पत्नी स्वाहा प्रकट हुई, वरुण देव के वामभाग से वरुणानी प्रकट हुई। परमात्मा की नि:श्वास वायु से पवन का प्रादुर्भाव हुआ। जो सभी मनुष्यों के प्राण हैं। वायुदेव के वामभाग से उनकी पत्नी वायवी प्रकट हुई।

इन सब की सृष्टि करके भगवान सभी देवी-देवताओं के साथ रासमण्डल में आए। उस रासमण्डल का दर्शन कर सभी लोग आश्चर्यचकित हो गए।

वहां परमात्मा से कन्या प्रकट हुई, जिसने फूल ले आकार में भगवान के चरणों में अर्घ्य प्रदान किया। अत:

इनका नाम राधा हुआ। उन किशोरी के रोमकूपों से लाखों गोपियों का आविर्भाव हुआ। भगवान के रोमकूपों से तीस करोड़ गोपगणों का आविर्भाव हुआ फिर भगवान के रोमकूपों से गायें, सांड, बछड़े व कामधेनु प्रकट हुई।

भगवान के गुहदेश से (कुबेर) व गुहक प्रकट हुए। कुबेर के वामभाग से उनकी पत्नी प्रकट हुई। भगवान के गुहदेश से ही भूत, प्रेत, पिशाच, कुष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस आदि प्रकट हुए।

भगवान के मुख से शंखचक्र, गदा, पद्मधारी, पार्षद प्रकट हुए, जिन्हे उन्होंने नारायण को सौंप दिया।

गुहकों को उनके स्वामी कुबेर को और भूत प्रेत भगवान शंकर को अर्पित कर दिए।

तदनन्तर भगवान के चरणों से, हाथों में जयमाला लिए पार्षद प्रकट हुए। भगवान ने उन्हे दास्यकर्म में लगा दिया। वे सभी श्री कृष्णपरायण (वैष्णव) थे।

भगवान के दाहिने नेत्र से तीन नेत्रों वाले विशालकाय दिगम्बर हाथों मे त्रिशूल और पदिश लिए भयंकर गण प्रकट हुए जो भेरव कहलाए।

भगवान (परमात्मा) के बाए नेत्र से ईशान प्रकट हुए। भगवान की नासिक छिन्द्र द्र से डाकिनियां, योगिनियां, क्षेत्रपाल व पृष्ठदेश (पीठ) से विभिन्न देवताओं का प्रादुर्भाव हुआ।

परमात्मा (श्रीकृष्ण) की आज्ञानुसार ब्रह्मजी ने

सबसे पहले मधु और कैटभ के मेदे से मेदिनी की सृष्टि की। ब्रह्मा जी ने आठ प्रधान पर्वत (सुमेरू, कैलाश, मलय, हिमालय, उदयाचल, अस्ताचल, सुवेल और गन्धमादन) और अनेकों छोटे-छोटे पर्वत बनाए। फिर ब्रह्मा जी ने सात समुद्रों (क्षारोद, सुराय, घृत, दधि तथा सुस्वादु जल से भरे हुये समुद्र) की सृष्टि की व अनेकानेक नदियों, गाँवो, नगरों व असंख्य वृक्षों की रचना की।

सात समुद्रों से घिरे, सातद्वीप (जम्बुद्वीप, शाकद्वीप, कुशद्वीप, लक्षद्वीप, कौचद्वीप, न्यगोधद्वीप तथा पुष्करद्वीप) का निर्माण किया। इसमें 49 उपद्वीप हैं। तदनन्तर ब्रह्माजी ने उस पर्वत के ऊपर सात स्वर्गीय (भूलोक, भूवलोक, स्वलोक, महलोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक) की सृष्टि की।

पृथ्वी के ऊपर भूलोक, उसके बाद भूवलोक उसके ऊपर स्वलोक तत्पश्चात जनलोक फिर तपलोक और उसके आगे सत्यलोक है। भैरू के सबके ऊपरी शिखर पर स्वर्ग की आभा वाला ब्रह्मलोक है। सबसे ऊपर ध्रुवलोक है। मेरू पर्वत के नीचे सात पाताल (अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, पाताल तथा रसातल है), जो एक से दूसरे के नीचे स्थित हैं। सबसे नीचे रसातल है। सात द्वीप, सात स्वर्ग तथा सात पाताल सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, ब्रह्माजी के अधिकार हैं। ऐसे असंख्य ब्रह्माण्ड है और वे महाविष्णु के रोमकूपों में स्थित है। भगवान की माया से प्रत्येक ब्रहाण्ड में अलग-

अलग दिक्पाल, ब्रह्मा, विष्णु व महेश देवता गृह-नक्षत्र मनुष्य आदि स्थित है। पृथ्वी पर चार वर्ण के लोग और उसके नीचे पाताललोक में नाग रहते है। पाताल से ब्रह्मलोक पर्यन्त ब्रह्माण्ड कहा गया है। उसके ऊपर बैकुण्ठ लोक है वह ब्रह्माण्ड से बाहर है। उसके ऊपर गोलोक है। परमात्मा की आज्ञा लेकर ब्रह्माजी ने मानवी सृष्टि की रचना की।

जैसे वायु आकाश से बाहर नही जा सकता, ऐसे ही भूत भी ब्रह्म से बाहर नहीं जा सकते।

अतः जो भी कुछ प्रकट या अप्रकट ब्रह्माण्ड में विद्यमान है, वो सभी ब्रह्म में ही निहित है। उससे बाहर नहीं। इस सृष्टि की उत्पत्ति क्या है। भगवत गीता का दावा है कि ईश्वर न केवल स्त्रोत है बल्कि संपूर्ण सृष्टि का पालनकर्ता और संहारक भी है। सब कुछ उसी से उत्पन्न होता है प्रकृति में विस्मयकारी घटनाओं को देखते समय यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि इन ब्रह्मांडीय अभिव्यक्तियों के पीछे एक शक्ति है इस प्रकार हम सर्वोच्च भगवान की स्थिति के बारे में जान सकते हैं, जो ईश्वर है।

सृष्टि का महत्व

यह ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण है। सृष्टि में मौजूद हर चीज में ईश्वर की ऊजा और बुद्धि है।

सृष्टि का स्त्रोत हर चीज में सक्रिय है, सृष्टि ईश्वरीय आदेशों में निहित है। सृष्टि ईश्वरीय शक्ति का प्रकटीकरण है। सृष्टि त्रिएक ईश्वर, पिता-पुत्र, और पवित्र आत्मा का कार्य है।

सृष्टि प्रकट करती है कि परमेश्वर कैसा है और वह कैसे कार्य करता है, क्योंकि उसके अनदेखे गुण अर्थात उसकी सामर्थ्य सृष्टि के समय से उसके कामों के द्वारा देखने में आते है।

सृष्टिकर्ता परमेश्वर हमारा उद्धारक है। सृष्टि उपासना का एक आधार है। सृष्टि में मौजूद हर चीज, ईश्वर की ही रचना है। यह हमें कर्म करने की प्रेरणा देती है। सृष्टि ईश्वर के चरित्र और स्वभाव को प्रकट करती है। सृष्टि का लक्ष्य ही जीवन का लक्ष्य है। ईश्वर शून्य से संसार को अस्तित्व में लाता है सृष्टि बिना किसी उद्देश्य के नही है, बल्कि इसका एक दिव्य उद्देश्य है।

हम सभी जीवात्माएँ इस सृष्टि में ईश्वर की सेवा के लिए ही अस्तित्व रखती है।

ईश्वर सभी भौतिक (और आध्यात्मिक) वास्तविकता का निर्माता है।

सृष्टि अनिवार्य रूप से, ईश्वरीय से प्रभुता में निहित है।

सुन्दर जाकी सृष्टि यह, ताकै टोटो कौन।
तू प्रभु के विश्वास बिन, परै न हांडी लौन।।

सृष्टि	प्रकृति
- सृष्टि का भाव व्यापक है।	प्रकृति सृष्टि के अन्तर्गत है।
- सृष्टि में प्राणी एवं वनस्पति के साथ समस्त चराचर का समावेश है।	प्रकृति का संबंध नैसर्गिकता से है।
- सृष्टि शब्द सम्बन्ध को दर्शाता है।	प्रकृति शब्द का कोई धार्मिक अर्थ नही है।

सुख-दुख, रात-दिन, सर्दी-गर्मी, बसन्त-बहार, खोना-पाना, आना-जाना, जीवन का यह ऐसा चक्र है जो कभी नहीं रूकता। ठहरती है केवल प्रकृति जो हर पल साथ चलती है। हर दिशा में मिलती है प्रंकृति की खासियत है कि वह हमें कभी अकेला नही होने देती।

प्रकृति है अनमोल धरोहर।
वरदान है परम परमेश्वर का।।

आत्मा

आत्मा क्या है - श्रीमद्भगवत गीता के अनुसार आत्मा परमात्मा का अंश है। आत्मा सत् है अर्थात चिरस्थाई है। आत्मा अविनाशी है अर्थात उसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता।

आत्मा अजन्मा नित्य शाश्वत् और पुरातन हैं। वह न तो जन्मता है न ही मरता है। आत्मा एक योनि के शरीर की मृत्यु होने पर कर्मानुसार मिले अन्य शरीर को धारण करता है। आत्मा का मूल शुद्ध अव्यक्त स्वरूप अपरिवर्तनीय है इस शरीर में आत्मा ही एक मात्र ऐसा तत्व है जो न तो किसी से उत्पन्न होता है न घटता-बढता है। आत्मा एक ऊर्जा का रूप है जिसे आत्मज्ञान और परमात्म ज्ञान के समय देखा जा सकता है। कई धार्मिक दार्शनिक और पौराणिक परम्पराओं में, आत्मा एक जीवित प्राणी का निराकार सार है।

आत्मा : इससे अभिप्राय व्यक्ति में अन्तर्निहित उस मूलभूत सत् से किया गया है जो कि शाश्वत तत्व है तथा मृत्यु के पश्चात भी जिसका विनाश नही होता। आत्मा का निरूपण, गीता में किया गया है। आत्मा को शस्त्र से काटा नहीं सकता, अग्नि उसे जला नहीं सकती, जल उसे डूबा नहीं सकता और वायु उसे सूखा नहीं सकती। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को त्याग कर नवीन शरीर धारण करता है

अन्य धर्मी का मानना : सबसे छोटे जीवाणु से लेकर सबसे बडे स्तनधारियों तक सभी जीवित चीजें स्वयं आत्माएं हैं (आत्मा जीव) और दुनियां में उनके भौतिक शरीर है वास्तविक स्वयं आत्मा है जबकि शरीर उस जीवन के कर्म का अनुभव करने के लिए एक तंत्र है।

इस प्रकार यदि कोई बोध को देखता है तो उसमें (आत्मा) रहने वाली एक आत्म-चेतन पहचान है और दुनियां में एक भौतिक (बोध का पूरा शरीर जो देखने योग्य है) है।

सोल यानि आत्मा, आत्मा यानि सेल्फ (खुद का स्वरूप)। जिसने आत्मा का अनुभव किया है उसने आत्मा की सुन्दरता का आनंद लिया है।

आत्मा का स्वभाव आनंद है
आनंद याने, शाश्वत सुख की अवस्था।
आत्मा का वास्तविक अर्थ
स्वयं खुद है स्वयं का सच्चा सुख।
शाश्वत सुख आनंद हमारे भीतर ही है
आपका सच्चा स्वरूप, यानि आत्मा,
अनंत सुख का धाम है।

आत्मा के गुण : प्रत्येक आत्मा के गुण समान होते हैं। अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति और अनंत सुख आत्मा के मुख्य गुण हैं।

आत्मा शाश्वत है और ठीक वैसे ही उसके गुण भी।

आत्मा प्रकाश स्वरूप है प्रत्येक जीव के शरीर में आत्मा प्रकाश स्वरूप के अलावा और कुछ भी नहीं है।

अज्ञान सागर में गिरे हुए मनुष्य को केवल उसके बाहरी पहनावे अर्थात स्थूल शरीर की रक्षा करके नहीं बचाया जा सकता है। जो इसे नही जानता एवं बाहरी पहनावे के लिए शोक करता है।

अर्जुन तो क्षत्रिय था। अत: उससे ऐसे आचरण की आशा न थी। भगवान श्री कृष्ण अज्ञानी पुरूष के शोक को विनिष्ट कर सकते हैं और इसी उद्देश्य से उन्होंने भगवत गीता का उपदेश दिया।

भौतिक शरीर तथा आत्मा के विश्लेषित अध्ययन द्वारा आत्म-साक्षात्कार का उपदेश, जिसकी व्याख्या भगवान श्रीकृष्ण द्वारा की गई है।

जब मनुष्य निष्काम भाव से कर्म करे और आत्मबोध को प्राप्त हो, तब साक्षात्कार सम्भव है।

भौतिक शरीर स्वभाव से नाशवान् है यह तत्क्षण नष्ट हो सकता है ओर सौ वर्ष बाद भी। इसे अनन्तकाल तक बनाए रखने की कोई संभावना नहीं है किन्तु आत्मा सुक्ष्म है इसे देखा भी नही जा सकता है मारना तो दूर रहा। पूर्ण आत्मा के सूक्ष्म कण अपने कर्म के अनुसार ही यह शरीर धारण करते हैं।

जीव को प्रकाश बताया गया है क्योंकि वह परमप्रकाश

का अंश है। आत्मा के प्रकाश से भौतिक देह का पोषण होता है जब आत्मा भौतिक देह से बाहर निकल जाती है। शरीर सड़ने लगता है, अतः आत्मा ही शरीर का पोषक है। शरीर अपने आप में महत्वहीन है।

गुणात्मक दृष्टि से परमात्मा का अणु-अंश परम से अभिन्न है। शरीर में 6 प्रकार के रूपान्तरण होते है। वह माता के गर्भ से जन्म लेता है, कुछ काल तक रहता है बढ़ता है कुछ परिणाम उत्पन्न करता है। धीरे-धीरे क्षीण होता है और अन्त में समाप्त हो जाता है। किन्तु आत्मा में ऐसे परिवर्तन नहीं होते। आत्मा अजन्मा है चूंकि वह भौतिक शरीर धारण करता है। अतः शरीर जन्म लेता है, आत्मा ना जन्म लेती है, न मरती है जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी होती है। चूंकि आत्मा जन्म नहीं लेता अतः उसका न तो भूत, न वर्तमान और न भविष्य। वह नित्य शाश्वत तथा सनातन है। अर्थात शरीर के परिवर्तनों का आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः आत्मा का मूल स्वभाव स्थिरता है। वह परमात्मा है जो अनंत अनंत तक व्याप्त होने से स्थिर है क्योंकि उसके पास हिलने के लिए (आवश्यक) खाली जगह उपलब्ध नही है और शांति स्थिरता प्राप्ति के पूर्व की आवश्यक स्थिति है तथा आनंद शांति व स्थिरता का स्वाद है।

आत्म चेतन है ऐसा तत्व है जो अतीत वर्तमान और भविष्य में रहता है आत्मा अमर और अमूर्त है, यह अचल है।

आत्मा में विविध गुण हैं। ये स्वाभाविक गुण हैं। ऐसे गुण जो कभी भी नहीं बदलते।

आत्मा के स्वाभाविक गुण अनंत है, जबकि अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति और अनंत सुख इसके मूल गुण है। कई अन्य भी गुण है।

आत्मा में अनंत शक्ति है। हम सब आत्मा है -

आत्मा	*परमात्मा*
-आत्मा चेतन तत्व है	-परमात्मा परम तत्व है
-आत्मा अविनाशी है	-परमात्माब्रह्मांडकानिर्माताहै।
-आत्मा पानी की बूंद	-परमात्मा समुद्र की तरह है
-आत्मा सांसारिक पीड़ाओ से ग्रस्त होती है	-परमात्मा सर्वव्यापी -अलौकिक शक्ति है
-आत्मा गतिहीन और कंपन रहित है।	- परमात्मा निर्गुण और निराकार है

परमात्मा

परमपिता परमात्मा को जाने बिना संसार को कितना ही क्यों न जान लें, जानकारी कभी पूरी नही होती।

अर्जुन को भगवान को जानने की विशेष जिज्ञासा थी। इसलिये भगवान कहते है कि सम्पूर्ण वेदों और शास्त्रों के द्वारा जानने योग्य मैं स्वयं तुम्हारे सामने बैठा हूँ।

वेदों के अर्थ- भाव आदि को भगवान ही यथार्थ रूप आश्रय जानते हैं। भगवान ने संसार वृक्ष को तत्व से जानने वाले मनुष्य को वेदविद कहा था।

संसार के यथार्थ तत्व को जान लेने वाला महापुरूष भगवान से अभिन्न हो जाता है।

संसार के यथार्थ तत्व को जानने का अभिप्राय है- संसार की स्वतंत्र सत्ता नही है और परमात्मा की ही सत्ता है। इस प्रकार जानते हुए अपना सम्बन्ध भगवान से जोड़ना संसार का आश्रय छोड़कर भगवान के आश्रित होना (हो जाना)।

भगवान ने श्रीमद् भगवत गीता में भिन्न-भिन्न रूपों से अपनी विभूतियों का वर्णन किया है।

सब कुछ वासुदेव ही है। मैं ही सबकी उत्पत्ति का कारण हूँ और मेरे से ही सब जगत् चेष्टा करता है।

चर और अचर कोई भी प्राणी ऐसा नही है जो मेरे से रहित हो अर्थात चराचर सब प्राणी मेरे ही स्वरूप है। तात्पर्य यह

हुआ कि सम्पूर्ण प्राणी पदार्थ परमात्मा की सत्ता से, ही सत्तावार हो रहे हैं। अतः संसार में परमात्मा को व्याप्त कहने पर भी वस्तुतः संसार बाद में है ओर उसका परमात्म तत्व पहले है। अर्थात पहले परमात्मा तत्व दिखता है बाद में संसार।

परमात्मा कौन

जो स्थूल होने से हमारी इन्द्रियों को दिखता है एवं इसका जो आधार या प्रकाशक है वह परमात्मा का निराकार रूप है जो बुद्धि से ज्ञात होता है। चराचर सृष्टि के रूप में जो कुछ भी दिख रहा है, वह परमात्मा का सगुण स्वरूप है। उसे ज्ञान, दृष्टि से आत्मा व कर्म दृष्टि से ईश्वर कहते हैं।

परमात्मा इस सगुण व निर्गुण, इन दोनों भावों का लय स्थान है जिसे पुरूषोत्तम कहते हैं। ये तीनों कल्पना, जिस परमात्व वस्तु पर की गई है वह वस्तु सबको नित्य प्रत्यक्ष दिखने वाला विश्व है और यही विश्वरूप परमात्मा है।

परमात्मा कौन (वेदों के अनुसार)

जिस व्यापक में यह सम्पूर्ण जगत उत्पत्ति स्थिति और प्रलय को प्राप्त होता है वह परमात्मा है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार

तस्य वाचकः प्रणवः अर्थात

ईश्वर का वाचक ॐ का स्वर है।

गुरू नानक के मुताबिक- एक ओंकार सतनाम् एक ॐ ही उसका सच्चा नाम है।

चीन के संत लाओत्से ने- महा संगीत पुकारा।

जापान के क्षेन फकीर- उसे एक हाथ की ताली की आवाज कहते है।

संत कबीर- ने अनाहत नाद और सूफियों ने अनहद के रूप में संबोधित किया।

भगवान महावीर ने दिव्य ध्वनि नामकरण किया।

परमात्मा का स्वरूप- हम इस भेद में नही जाकर सीधे समझें। ब्रह्म को प्रणव सचिदानंद परब्रह्म, ईश्वर, परमेश्वर और परमात्मा कह सकते है।

यह परम सत्ता है-

वेद और पुराणों के अनुसार- इस परमसत्ता के कारण ही ब्रह्मांड का उस एक परमेश्वर के कारण ही अस्तित्व है।

परमात्मा तत्व

परमात्मा तत्व में मन, बुद्धि वाणी आदि की कोई गति नहीं होती। मन सहित वाणी आज सब इन्द्रियां, उसे न पाकर जहाँ से लौट आती है परमात्व तत्व का अनुभव उत्पन्न नहीं होता।

यदि अनुभव उत्पन्न हो तो वह मिट जाएगा, परमात्मा तत्व अनुभव स्वरूप ही है, जब उसकी तरफ दृष्टि जाती है, दृष्टि जाने से हृदय ग्रंथि का भेदन हो जाता है, सारे संशय मिट जाते हैं और संपूर्ण कर्मी का नाश हो जाता है।

परमात्मा तत्व प्रकृति से भी परे है। प्रकृति भी वहाँ तक नहीं पहुंच सकती है।

वास्तव में उसका वर्णन विचार चिंतन संकेत आदि कुछ भी नहीं हो सकता है। आज कुछ न कुछ कल्पना करके ही उसका वर्णन हो सकता है।

परमात्मा के स्वरूप

सच्चिदानंद स्वरूप परम दिव्य लेकिन परमात्मा किसी एक स्वरूप में सीमित नहीं है। अनेको रूपों में विराजमान है वे ही निराकार है और वे ही साकार।

परमात्मा अदृश्य हैं

वेदों के अनुसार- जिस व्यापक में यह सम्पूर्ण जगत उत्पत्ति स्थिति और प्रलय को प्राप्त होता है वह परमात्मा है।

परमात्मा का स्वरूप- उस आत्मा का पूर्ण विराट स्वरूप है परमात्मा, जो ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

परमात्मा कौन ?

परमात्मा ही सब कुछ है। ये जानना ही ज्ञान है। ये जानना ही ब्रह्मज्ञान है। यही आत्मज्ञान है और यही परमज्ञान है।

वह परमतत्व परमात्मा सूर्य के तेज रूप में चन्द्र के शीतलता में वृहस्पति के गुरूत्वाकर्षण में शुक्र के शुक्राणुओं में मंगल के रज में बुद्ध की चंचलता में शनि की गति में भी परम तत्व परमात्मा ही आत्मा रूप में स्थित है। परमात्मा निराकार है ओर परमात्मा साकार भी है।

परमात्मा कैसे होते हैं

परमात्मा को आप जैसा देखना चाहते हो वो वैसे होते हैं। ना तो भगवान का कोई रूप, ना तो कोई रंग, बस भक्त जिस तरह से याद करते है जिस रंग और रूप से कामना करते हैं, वे प्रकट हो जाते हैं। हम (अच्युत आनंद : तो आनंद उभार देंगे। भगवान की अपनी कोई जाति नहीं है। सभी उसको अपने अपने नामों से पुकारते हैं)

भगवान, परमात्मा के अनेक नाम, कोई प्यार से जैसे मेरे गोविंद, मेरे प्रभु, मेरे हरि, मेरे मालिक, मेरा गॉड, मेरा खुदा, ये सब प्यार से हम पुकारते हैं। जहाँ पर जात पात, रंग रूप कुछ भी नहीं है। केवल प्यार से, भक्ति के लिए पुकारते हैं।

भगवान के स्वरूप का वर्णन :

गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया कि मेरे इस रूप का वर्णन तो इन आँखो से हम नहीं कर सकते हैं। हमे जब दिव्य, दृष्टि परमात्मा प्रदान करते हैं तब स्वरूप को अन्दर से देख सकते हैं। महसूस कर सकते हैं।

परमात्मा का अविनाशी स्वरूप :-

सम्पूर्ण जगत सूत्र में, सूत्र के मणियों के सदृश्य मेरे में गूँथा हुआ है। हे अर्जुन! जल में रस हूँ तथा चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ और सम्पूर्ण वेदों में ओंकार हूँ तथा आकाश में शब्द और पुरूषों में पुरूषत्व हुँ। पृथ्वी में पवित्र गन्ध और अग्नि में तेज हूँ। सम्पूर्ण भूतों में उनका जीवन

हूँ, अर्थात जिससे वे जीते है वह मैं हूँ और तपस्वियों में तप हूँ। मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ और सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात शास्त्र के अनुकूल काम हूँ और भी जो सत्वगुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं और जो रजोगुण से एवं तमोगुण से होने वाले भाव हैं और जो रजोगुण से तथा तमोगुण से होने वाले भाव हैं उन सबको तू मेरे से ही होने वाले (ऐसा जान) परन्तु वास्तव में उनमें में और वे मेरे से नहीं हैं यह अलौकिक अर्थात अति अद्‌भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बडी दुष्कर है। अविनाशी, अजन्मा हुआ भी अपनी माया से प्रकट होता हूँ अपनी योग माया से छुपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ।

श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि जो गुण हैं और जो कर्म हैं, उनके विभाग से जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र मेरे द्वारा रचे गए है उनके कर्ता को भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू अकर्ता ही जान। मेरे को कर्म लिपायमान नहीं करते। परम ब्रह्म परमेश्वर एक ही है। वे किसी भी समय किसी भी रूप में प्रकट हो सकते हैं। दिव्यानंद की सीमाओं का अंत कोई पा नही सकता। परमात्मा स्वयं ही समस्त शक्तियों के नियंत्रक है।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं-

हरहिं हरिता विधिहिं विधिता

शिवहिं शिवता जो दई

वे ही हैं जो विष्णु को पालन की शक्ति देते हैं, ब्रह्मा को रचना करने की शक्ति देते हैं, शिव को संहार करने की शक्ति देते हैं। जो अनंत कोटि ब्राह्मणों के सभी जीवों के हृदय में साक्षी बन तत्पश्चात उसका फल प्रदान करते है। इनको परमात्मा भी कहते हैं। परमात्मा ज्ञान और अज्ञान से परे है। परमात्मा ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो के एकमात्र ईश्वर हैं जो प्रकृति से परे हैं। उनका विग्रह सत, चित और आनन्दमय है। प्रकृति भी उन्हीं का अंश कही गयी है।

अविनाशी परमात्मा

परमात्मा को अजन्मा, अजर, अमर कहते हैं। गीता अध्याय (2) में कहा है कि अविनाशी तो उसको ज्ञान जिसको मारने में कोई भी सक्षम नही है और जिस परमात्मा ने सर्व की रचना की है। उत्तम पुरूष अर्थात पुरूषोत्तम तो कोई अन्य ही है जिसे परमात्मा कहा गया है जो तीनो लोकों में प्रवेश करके सबका धारण पोषण करता है वह अविनाशी है।

वह परम अक्षर ब्रह्म है। इसी को पुरूषोत्तम कहा है। जो सर्व सृजनहार है कुल का मालिक है अर्थात परमात्मा है।

अविनाशी क्या है

अब हम ये जानते है कि अविनाशी कहते किसे है। किसी काल में, किसी कारण से, कमी, किंचित मात्र भी जिसमें परिवर्तन नही होता जिसकी क्षति नहीं होती। जिसका अभाव नहीं होता। उसका नाम (अनाशी) अर्थात

अविनाशी है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है-

राम ब्रह्म परमार्थ रूपा।

अविगत अलख अनादि अनुपा ।।

सृष्टि को पैदा करने वाला परमात्मा अव्यक्त, सर्वव्यापक, अजन्मा अविनाशी और अलख है। वह अनेक नामों से जाना जाता है। यथा- ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा, खुदा, गॉड, रामकृष्ण, शिव, हरि आदि। वही अविनाशी परमात्मा है। पवित्र गीता में है कि

अविनाशी जिसको मारने में कोई सक्षम नहीं,

वह अविनाशी तत्व आत्मा है।

ये जो सम्पूर्ण अंतरिक्ष और आकाश है ये सब ईश्वर ही है।

न तो इसकी कोई सीमा है और न ही ये नष्ट हो सकता है।

इसलिए ईश्वर को अनंत और अविनाशी कहा गया है।

ईश्वर (परमात्मा) का मतलब एक चेतन शक्ति, जिनसे सब कुछ उत्पत्ति होती है। हम इसको ऐसे समझते हैं हमारा जन्म हुआ पृथ्वी पर और पृथ्वी आकाश और अंतरिक्ष में स्थित है। पृथ्वी से ही अन्त उपजा, जिसका जन्म देने वाले माता पिता ने खाया उनके मिलन से जो पदार्थ निकला उससे मेरा पिंड बना। उस पिंड के चैतन्य शक्ति के रूप में आत्मा आया। फिर मैं एक जीवात्मा के रूप में गर्भ से बाहर आकाश और पृथ्वी में आया ये सब ईश्वर के ही अंश हैं।

परमात्मा एक शक्ति है उस शक्ति के बिना कुछ संभव नहीं है। शक्ति का, कभी नाश नही होता। ईश्वर का मतलब जो सबका स्वामी हो। जिसकी शक्ति से सब संचालित होता है। ईश्वर को अनंत और अलौकिक कहा गया है। क्योंकि वे एक सर्वशक्तिमान और सर्वबंधु सत्य हैं। वे समय और स्थान से परे हैं और वे ब्रह्मांड के सृजनकर्ता और पालनहार है।

अनंतता

परमात्मा को अनंत इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसकी कोई सीमा नहीं है। वे समय और स्थान से अलग है और वे हमेशा से है और वे हमेशा एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। वे सभी ब्रह्माण्डो में मौजूद हैं और वे सभी ब्रह्मांण्डो को नियंत्रित करते हैं।

ईश्वर को अविनाशी इसलिए कहा जाता है क्योंकि उनका कभी विनाश नही होता। वे हमारे परमात्मा है और परमात्मा एक शुद्ध प्रकाश है।

ईश्वर का स्वरूप

ईश्वर अनंत और ज्ञानस्वरूप है

ईश्वर भूत, वर्तमान और भविष्य का सर्वज्ञ है।

ईश्वर हर जगह मौजूद है।

ईश्वर सर्वगुण सम्पन्न सर्वहितकारी सर्वप्रेमी है।

ईश्वर शाश्वत है। वह जीवों को उनके कार्यो के अनुसार सुख, दुख प्रदान करता है। ईश्वर कर्म फलदाता है। वह

सबका स्वामी है। भगवद्गीता में ईश्वर को पुरूषोत्तम की संज्ञा दी गई है। उन्हें प्रकृति और पुरूष से परे माना गया है तथा परमात्मा या परमब्रह्म कहा गया है।

परमात्मा और परमब्रह्म का वर्णन करते हुए उनके दो स्वरूप बताये गए है - व्यक्त और अव्यक्त।

व्यक्त स्वरूप का वर्णन :- प्रकृति मेरा स्वरूप है जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है।

गीता में परमात्मा के अव्यक्त का वर्णन अनेक स्थलो पर हुआ है इनमें प्रमुख- यह परमात्मा अनादि, निर्गुण और अव्यक्त है इसलिए शरीर में स्थिर रहकर भी न तो कुछ करता है और न लिप्त ही होता है।

परमात्मा का सच्चा स्वरूप अव्यक्त ही है। व्यक्त स्वरूप को गीता में मायिक कहा गया है।

यद्यपि में अव्यक्त हूँ तथापि बुद्धिहीन पुरूष मुझे व्यक्त समझते हैं और व्यक्त से भी परे मेरे अव्यक्त रूप को नहीं पहचानते। श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

हे अर्जुन ! सृष्टि के हजारों प्राणियों में से कोई विरला ही होता है जो मुझे तत्व से जान पाता है और मुझमें मन से श्रद्धा का भाव रखता है।

परमात्मा ही परमशक्ति है

परमात्मा के कारण प्रकृति की सम्पूर्ण शक्ति परम शक्ति कहलाती है। परमात्मा को सर्वशक्तिमान कहते हैं।

परमात्मा को शक्ति असीम होती है।

परमात्मा की मूल शक्ति कई धार्मिक और आध्यत्मिक परम्पराओं से विभिन्न रूपों में वर्णित की गई है। परमात्मा स्वयं ही मूल शक्ति है- उन्होंने ही प्रथम में जगत माता भगवती (माया) को प्रकट किया है। इसीसे सभी संसार की संरचना हुई है। हिन्दू धर्म में परमात्मा की मूल शक्ति को माया इसे ब्रह्माण्ड की सृष्टि स्थिति ओर संहार का कारण माना जाता है। सनातन धर्म में देवी देवताओं को सृष्टि की शक्ति का प्रतीक माना जाता है।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ईश्वर की शक्ति काम करती है। परमात्मा ने अपनी शक्ति से संपूर्ण जगत का निर्माण किया। परमात्मा अनेकों शक्तियों के भंडार हैं।

परमात्मा की शक्ति प्रकृति ताकत विभूति

परमपिता परमात्मा की प्रकृति का कोई अन्त नहीं है। वह बेअंत है । हम उसको कोई आकार, प्रकार में बया नहीं कर सकते है। जब अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण में श्रद्धा उत्पन्न हुई तब अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा कि जो आप मेरे को बता रहे हैं कि अनादि तथा लोकों का महान ईश्वर को तत्व से जानता है वह मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष है। हे महाबाहों ! मेरे परम रहस्य वचन श्रवण कर।

मेरी उत्पत्ति को देवता लोग और महर्षिजन भी नहीं जानते हैं। मैं ही आदि कारण हूँ।

प्राणियों के जो भाव है, नाना प्रकार के निश्चय करने की शक्ति एवं तत्वज्ञान और अमूढ़ता क्षमा, सत्य, सुख, दुख, उत्पत्ति, प्रलय, भय, अभय, अहिंसा, संतोष, तप दान से जो भाव है ना वे सब मेरे से ही होते है। ये जो सात, महर्षिजन और चौदह मनु यह सबके सब मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए है कि जिनकी संसार में यह सम्पूर्ण प्रजा है।

भगवत गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन!

कल्प के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात प्रकृति में लय होते हैं और कल्प के आदि में उनको मैं फिर रचता हूँ।

कैसे - अपनी त्रिगुणकारी माया को अंगीकार करके, स्वभाव के वश से उनके कर्मी के अनुसार रचता हूँ।

हे अर्जुन! यह जो मेरी माया है चरायर सहित सर्व जगत को रचती है और यह जो संसार है ना आवागमन चक्र में घूमता है। श्रीकृष्ण जी अर्जुन को, जो कि गीता में है, बता रहे हैं कि हे अर्जुन! मैं ही इस सम्पूर्ण जगत का धारण पोषण करने वाला, फल को देने वाला पिता-माता और पितामह हूँ।

अन्न मैं हूँ, औषधि अर्थात सब वनस्पतियाँ में हूँ मंत्र में हूँ, अग्नि में हूँ, पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेद,

सामवेद और यजुर्वेद भी मैं हूँ। सबका हित करने वाला और उत्पत्ति प्रलयरूप तथा सबका आधार और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। मैं ही सूर्यरूप हुआ तपता हूँ तथा वर्षा को आकर्षित करता हूँ और हे अर्जुन मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत और असत भी सब कुछ मैं ही हूँ।

अर्जुन श्री कृष्ण से कहते है, हे जनार्दन ! अपनी विभूति को, फिर भी विस्तारपूर्वक कहिए क्योंकि आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है।

हे अर्जुन मेरे विस्तार का अन्त नहीं है।

मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ।

अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु और ज्योतियों में किरणों वाला सूर्य हूँ। देवताओं में मरीयि नामक वायुदेवता और नक्षत्रों का अधिपति चन्द्रमा हूँ।

मैं वेदों में सामवेद हूँ देवों में इन्द्र हूँ और इन्द्रियों में मन हूँ। भूत प्राणियों में चेतनता अर्थात ज्ञानशक्ति हुँ मैं रूद्रों में शंकर हूँ और चन्द्रमा तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूँ।

और आठ वासुओं में अग्नि हूँ तथा शिखर वाले पर्वतों में सुमेरू पर्वत हूँ।

देवताओं का पुरोहित बृहस्पति मेरे को जान सेनापतियों में स्वामी कार्तिक और जलाशयों में समुद्र हूँ। महर्षियों में भृगु और वचनों में एक अक्षर अर्थात ओंकार हूँ।

सब प्रकार के यज्ञों में जपयज्ञ और स्थिर रहने वालों में

हिमालय पहाड़ हूँ।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि उनसे पहले चार सनकादिक मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार थे। ये सब मेरे ही संकल्प से पैदा हुए हैं।

ये दुनिया मेरे ही संकल्प से बनी है। मैं ही सबका जन्मदाता हूँ। सबके अंदर चेतना के रूप में विराजमान हूँ। चेतना के शरीर से निकल जाने पर मृत्यु हो जाती है।

श्रीकृष्ण अपनी विभूति ताकत का बखान करते हुए अर्जुन से कहते है कि मेरी किसी भी शक्ति का अन्त और शुरूआत नहीं है। जो कुछ द्रव्यमान संसार है सो सब भगवान की माया है। यह जानना ही तत्व से जानना है।

सब में ओतप्रोत, सदा में अखिल विश्व मेरा विस्तार श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि सब जो वृक्ष हैं वृक्षों में पीपल का वृक्ष और देव ऋषियों में नारदमुनि तथा गन्धर्वों में चिदस्थ और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।

श्रीकृष्ण अपनी विभूतियों को संक्षेप में बताने के बाद अर्जुन से कहते हैं-

हे अर्जुन! मैं अपने किसी एक अंश से इस सम्पूर्ण जगत को व्याप्त करके स्थित हूँ। अनंत ब्रह्माण्ड मेरे किसी एक अंश में है। हे अर्जुन! विभूतियों का सार भी मैंने तुम्हे कह दिया।

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्माण्ड

श्रीकृष्ण कितने विलक्षण है। यह सुनकर अर्जुन दंग रह

जाते हैं। अब अर्जुन की वास्तविक शरणागति यहां से शुरू होती है। अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण की कृपा को देखकर स्तब्ध है।

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं- हे अर्जुन ! सृष्टि के हजारो प्राणियों में से कोई विरला ही होता है जो मुझे तत्व से जान पाता है और मुझमें मन से श्रद्धा का भाव रखता है। हे धुनुर्घट अर्जुन, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, तेज, मन, बुद्धि एवं अहंकार रूपी आठ तत्व ही मेरी प्रकृति है। इन सब की उत्पत्ति मेरी ही माया से होती है। यह सभी आठों तत्व शरीर के भीतर भी है और बाहर भी।

शरीर के अंदर, इनकी क्या स्थिति होती है अब यह जान।

धरती का अंश मांस है

जल का अंश लहू है

तेज अग्नि है जो उदर से अन्न को पचाती है।

आकाश का अंश पोलापन है।

तथा

मन बुद्धि और अहंकार- यह आठों मेरी माया है।

नौवां तत्व स्वयं प्राणी है।

सारा संसार इन्हीं तत्वों का है।

चौरासी लाख योनियाँ भी इन्ही की बनाई हुई है।

अब यह भी सुन मैं कैसा हुँ और कौन हूँ।

सारी सृष्टि मेरी ही माया से उत्पन्न है।

मेरे ही द्वारा यह सब उत्पन्न हुए हैं। मैं ही पालनहार

हूँ और मै ही संहारकर्ता हूँ। मै सबसे अलग हूँ लेकिन मुझसे अलग कुछ भी नहीं है। हर प्राण मुझसे इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि जिस प्रकार मोती माला में पिरोए होते है। अर्थात सृष्टिगत जितने प्राणी हैं उनमें मेरा ही अंश विद्यमान है।

परमात्मा समस्त अवतारों के उद्गम है। परमात्मा समस्त उत्पत्ति तथा प्रलय का कारण होने के अलावा इन सबसे पृथक रहते हैं। परमात्मा सर्वव्यापी होते हैं। परमात्मा को जान पाना या समझ पाना व्यक्ति की सोच से परे है। जब तक परमात्मा की कृपा ना हो परमात्मा की कृपा (दिव्य दृष्टि) से ही हम समझ सकते हैं। सब कुछ जो दिखाई देता है, परमात्मा का स्वरूप है। जो भी तत्वरूप है वो सब परमात्मा का ही जानो।

परमात्मा का विराट रूप

(स्वरूप दर्शन)

श्रीमद् भगवत गीता में परमात्मा (श्रीकृष्ण) ने अर्जुन को जो अपनी माया (प्रकृति का गुप्त भेद बताया जो परमात्मा का स्वरूप का ज्ञान दिया, रहस्य बताया) उससे अर्जुन ने उस नाश रहित स्वरूप की गुणकीर्ति परमात्मा के मुखारविन्द से सुनी है।

अर्जुन श्रीकृष्ण की अलौकिकता का दर्शन करना चाहते है। प्रार्थना करें कि वे अपना विराट रूप दिखलाये। परमात्मा समस्त कारणों के कारण हैं और परमात्मा प्रत्येक जीव के हृदय में विद्यमान हैं।

परमेश्वर का ज्ञान पाना, या देख पाना संभव नहीं है। यदि अनंत स्वयं प्रकट हो जाए तो अनन्त की कृपा से ही उसकी प्रकृति को समझा जा सकता है।

अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हुए कहा कि हे कमल नयन! आप मुझे अपने विराट स्वरूप का दर्शन कराएं।

आपके ज्ञानमय, ऐश्वर्ययुक्त, बलशाली तथा तेजस्वी स्वरूप का मैं दर्शनाभिलाषी हूँ।

अर्जुन कहते है कि यदि आप ऐसे (विराट स्वरूप) का दर्शन करने में मुझे असमर्थ समझते हैं तो अपने अविनाशी आत्मस्वरूप का ही मुझे दर्शन कराइए।

अर्जुन के ऐसे भावपूर्ण वचनों को सुनकर भगवान श्रीकृष्ण बोले- हे अर्जुन, ये जो मेरे समस्त रूप हैं ना इन समस्त रूपों को न तो मनुष्य ने इससे पहले देखा है न सुना है। अब भगवान श्रीकृष्ण इन आश्चर्यमय रूपो को प्रकट कर रहे हैं। हे पार्थ ! अब तूं मेरे सैकड़ो- हजारों, नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा नाना आकृतिवाले अलौकिक रूपों को दिखाने के लिए तुझे दिव्य चक्षु प्रदान करता हूँ क्योंकि तेरे इन चर्म-चक्षुओं द्वारा इनका अवलोकन कर पाना असंभव है। मेरे द्वारा प्रदान किए गए दिव्य अर्थात अलौकिक चक्षुओं के द्वारा तू मेरे प्रभाव और योगशक्ति को देख सकेगा। महायोगेश्वर और सब पापों के नाश करने वाले भगवान ने इस प्रकार कहकर उसके पश्चात अर्जुन को परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्यस्वरूप दिखलाया।

अनेक मुख और अनेक नेत्रों से युक्त अनेक अद्भुत दर्शनों वाले बहुत से दिव्य भूषणों से युक्त और बहुत से दिव्य शस्त्रों को धारण किए हुए और दिव्य गंध का सारे शरीर में लेप किए हुए, सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त सीमारहित और सब ओर मुख किए हुए विराटस्वरूप परमेश्वर को अर्जुन ने देखा।

आकाश में हजार सूर्यो के एक साथ उदय होने से जो प्रकाश उत्पन्न होगा, वह भी उस विश्वरूप

परमात्मा के प्रकाश के समान नहीं हो सकेगा।

अर्जुन ने उस समय अनेक प्रकार से विभक्त अर्थात पृथक-पृथक हुए सम्पूर्ण जगत् को आश्चर्यचकित होकर भगवान श्रीकृष्ण के शरीर में एक जगह स्थित देखा।

अर्जुन का रोम-रोम हर्ष एवं प्रफुल्लता से भर उठा। वह उस विश्वरूप परमात्मा को श्रद्धा-भक्ति सहित नत मस्तक होकर हाथ जोड़कर बोला-

हे परमेश्वर! आपके शरीर में सम्पूर्ण देवों तथा अनेक भूतों के समुदायों को और कमल के आसन पर विराजमान ब्रह्मा एवं महादेव को सम्पूर्ण ऋषियों की तथा दिव्य सर्पो को देख रहा हूँ।

हे जगत के पालनकर्ता ! आपके अनेक हाथ पैर, मुख और नेत्र सभी ओर से अनन्त रूप वाले हैं। आपका न तो अन्त दिखाई दे रहा है न मध्य और न ही आदि।

हे परमात्मा! आपको मैं मुकुट-युक्त गदायुक्त और चक्रयुक्त देख रहा हूँ। आप सभी ओर से प्रकाशमान, तेजपुंज प्रज्वलित अग्नि सूर्य के दृश्य ज्योतियुक्त अतिगहन तथा अप्रमेय स्वरूप है।

हे भगवान! आप ही जानने योग्य परम अक्षर अर्थात परब्रह्म परमात्मा है। हे परमेश्वर ! मैं आपको आदि

अन्त और मध्य से रहित अनन्त सामर्थ्य से युक्त अनन्त हाथों वाला चन्द्र-सूर्य रूप नेत्रों वाला प्रज्वलित, अग्निरूप मुख वाला तथा अपने तेज से इस जगत को तपायमान करता हुआ देख रहा हुँ।

हे महात्मन्! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशाएं, एक आपसे ही परिपूर्ण हैं तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक अतिव्यथा को प्राप्त हो रहे हैं। देवताओं के समूह आपमें प्रवेश करते हैं और कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़े आपके नाम और गुणों का उच्चारण करते है। महर्षि और सिद्धों के समुदाय *कल्याण हो।* ऐसा कहकर उत्तम उत्तम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं जो ग्यारह रूद्र और बारह आदित्य तथा आठ वसु, साध्यगण, विश्वदेव, अश्विनीकुमार तथा मरूद्रण और पितरों का समुदाय तथा गंधर्व यक्ष राक्षस और सिद्धों के समुदाय हैं, वे सब ही विस्मित होकर आपको देखते है।

हे महाबाहों! आपके बहुत मुख और नेत्रों वाले बहुत हाथ, जंघा और पैरों वाले बहुत उदरों वाले और बहुत सी दाड़ो (दाँतों) के कारण अत्यन्त विकराल महान रूप को देखकर सब लोग व्याकुल हो रहे हैं। मैं भी व्याकुल हो रहा हुँ। आकाश को स्पर्श करने वाले दैदीव्यमान अनेक वर्णों से युक्त तथा फैलाए हुए मुख

और प्रकाशमान विशाल नेत्रों से युक्त आपको देखकर भयभीत अन्त:करण वाला मैं धीरज और शान्ति नही पाता हूँ।

मुझे दिशा ज्ञान का बोध नहीं हो रहा है। हे गोविंद! आपके इस विराट रूप से मैं तृप्त हो गया हुँ। अत: आप शीघ्र ही प्रसन्न हो जाइए। हे प्रभो, अनेक प्रमुख योद्धागण और हमारे पक्ष के भी योद्धागण, आपके इस विराट रूप के मुख में समाते दिखाई पड़ रहे हैं। अनेक योद्धागण आपके दांतो के मध्य चूर्णवस्था में दिख रहे हैं। हे भगवान। अनेक वीर आपके मुख में इस तरह समाते दिख रहे हैं जिस तरह अनेक नदियाँ वेगवती धारा के साथ समुद्र में समा जाती हैं जैसे पतंगे मोह के वश होकर नष्ट होने के लिए प्रज्वलित अग्नि में अतिवेग से प्रवेश करते हैं। वेसे ही यह सब लोग भी अपने सर्वनाश के लिए आपके मुखों में अतिवेगयुक्त होकर प्रवेश करते दिख रहे हैं। हे परमेश्वर! आप उन सभी सम्पूर्ण लोकों को, प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रसन् हुए सभी ओर से चाट रहे है आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत को अपने तेज के द्वारा परिपूर्ण करके तपायमान करता है। हे प्रभों! कृपया मुझे बताइए कि आप उग्र रूप वाले कौन है।

हे देवाधिदेव! आपको मेरा नमस्कार है। मैं आपको तत्व से जानना चाहता हूँ। इस प्रकार आग्रह करके

पूछने पर भगवान श्रीकृष्ण बोले- हे अर्जुन! मैं लोकों का नाश करने वाला बड़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय उन लोगों को नष्ट करने के लिए प्रकट हुआ हूँ। प्रतिपक्षियों की सेना में तेरे जो योद्धा हैं वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात तेरे द्वारा युद्ध न करने पर भी इन सबका नाश हो जाएगा। इसलिए हे कौन्तेय ! तूं युद्ध के लिए खड़ा हो हे सत्यसाची तू तो केवल निमितमात्र है। देवकीनन्दन के इन वचनों को सुन मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़कर प्रणाम करके उनके प्रति गद्‌गद् वाणी से इस प्रकार बोला- हे भगवान! यह योग्य ही है कि जो आपके नाम और प्रभाव के कीर्तन से जगत अति आनन्दमयी होता है तथा अनुराग को भी प्राप्त होता है भयभीत हुए राक्षस लोग दिशाओं में भागते हैं और सिद्धगणों के समुदाय नमस्कार करते है। जब आप ही आदिकरण है तब देवादि भी आपकी वन्दना क्यों नहीं करेंगे। हे परमप्रभु ! सत्य असत्य, और इन दोनों से भी पृथक जो सच्चिदानन्दन ब्रह्म है वह आप ही तो कहलाने योग्य है। हे जगदीश। आप ही आदिदेव सदा विद्यमान रहने वाले सनातन पुरूष है। आप ही सृष्टि के अन्तिम आक्षय सृष्टि के भेद जानने वाले चिंतनीय और परमपद स्वरूप हैं। हे अर्न्तयामी! यह सृष्टि आप ही से पूरित है। आप ही यम वायु वरूण, अग्नि, चन्द्रमा एवं प्रजापिता ब्रह्मा को उत्पन्न करने वाले है। हे

दीनानाथ ! आपको बारम्बार नमस्कार है। नमस्कार है। नमस्कार है। हे अनन्त शक्ति से सम्पन्न स्वामी! आपको सभी और से नमस्कार है क्योंकि आप ही सर्वस्व हैं।

हे भगवान्! अब तक में आपकी महिमा से अनभिक्ष था। मित्रता भाव में हे सखा! हे कृष्ण! हे यादव ! जो संबोधन मैने हठात आपको दिए हैं तथा विहार, आसन, भोजनादि में अकेले अथवा सखाओं के सामने आप मेरे द्वारा परिहास, रूप में अपमानित किए गए है उन सब अपराधों के लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। हे देवाधिदेव ! आप इस चराचर जगत के पिता और गुरु से भी बड़े गुरु एवं अति पूजनीय है। प्रभो ! मैं अपने शरीर को अच्छी प्रकार आपके चरणों में रखकर और प्रणाम करके आप ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना करता हूँ।

हे परमेश्वर! पिता जैसे पुत्र को सखा जैसे सखा को ओर पति जैसे अपनी पत्नी (स्त्री) के अपराधों को क्षमा कर देता है वेसे ही आप मेरे भी अपराध क्षमा कर दे।

हे गोविन्द! मैने आपका ऐसा विश्वरूप पहले कभी नहीं देखा था, इसलिए मुझे आश्चर्य हो रहा है। आपके इस रूप का दर्शन करके मन तो पुलकित हो उठा है।

लेकिन मैं भयभीत हो रहा हूँ। अतः हे पुरूषोत्तम आप प्रसन्न होकर मुझे अपने चतुर्भुज रूप का दर्शन कराए।

हे जगत्पति! अब आप प्रसन्न हो जाइए।

हे देवेश! मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किए हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूँ। इसलिए हे सहस्त्रबाहो ! आप मात्र एक बार अपने चतुर्भुज रूप का दर्शन देकर मुझे कृत्य करें। मैं आपसे करबद्ध प्रार्थना करता हूँ।

इस पर भगवान श्री कृष्ण बोले- हे अर्जुन! मेरे जिस विराट रूप का तूने दर्शन किया है वह देवताओं को भी सुलभ नहीं है। मेरे इस रूप का दर्शन पाने के लिए बड़े-बड़े ऋषि-मुनि एवं घोर तपस्वी भी अभिलाषी रहते हैं लेकिन मैने उन्हे कभी अपने इस रूप का दर्शन नहीं कराया। तू मेरा परम प्रिय है। अतः मैने तुझे इस रूप के दर्शन कराए है। हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! सृष्टि में जो प्राणी जप, तप, यज्ञ, कर्म एवं दान आदि करते है, उन्हें भी इस रूप का दर्शन दुर्लभ है। मेरे इस विशाल रूप को देखकर तू व्यग्र न हो, अपने अन्दर उत्पन्न भय को दूर कर।

अब मैं तुझे अपने चतुर्भुज रूप का दर्शन कराता हूँ। रणभूमि पर अपनी दिव्य दृष्टि गड़ाए बैठा

संजय घृतराष्ट्र से बोला- हे राजन् ! भगवान श्री कृष्ण अब अर्जुन को अपने चतुर्भुज रूप का दर्शन करा रहे है। श्री कृष्ण का वह चतुर्भुज रूप परम सौम्य है। चारों हाथों में क्रमश: शंख, चक्र, गदा, पदम व शीश पर किरीट विराजमान है। उनके अंग पर पीताम्बरी है तथा अंग-कांति श्यामल है।

हे राजन्! भगवान श्रीकृष्ण के रूप का दर्शन करते हुए अर्जुन बोला कि हे भगवन्। आपके इस परम सौम्य रूप का दर्शन करके मुझे अपूर्व शांति की प्राप्ति हुई है।

अर्जुन के इन वचनों को सुनकर भगवान श्री श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन! मेरा यह चतुर्भुज रूप भी देवताओं के लिए दुर्लभ है। देवता तथा ऋषिगण भी मेरे इस रूप का दर्शन करने के लिए तरसते है।

मेरे इस रूप का दर्शन जप, तप, वेदाध्ययन, दान तथा यज्ञादि, कर्म करने से भी नहीं होता है।

हे धनंजय! मेरे इस रूप का दर्शन वही कर पाता है, जो मुझे तत्वरूप से जान जाता है तथा एकान्त भाव से मेरी भक्ति करते हुए मुझमें ही लीन रहता है। हे अर्जुन! जो प्राणी जप, तप, यज्ञ दानादि कोई भी कर्म करता है वह मुझे ही समर्पित कर देता है। जो मेरे प्रति समर्पण की भावना रखता है, मेरे ही नाम, गुण, तत्व

आदि का श्रवण करता है, ध्यान व आसक्ति रहित, भाव से नित्य निरंतर मेरा ही होकर रहता है, सांसारिक वस्तुओं की मोह-माया से दुर रहता है और जो किसी के साथ द्वेषभाव नही रखता, ऐसा ही भक्त मुझे प्राप्त होता है।

श्रीकृषण ने अपने मुख से अर्जुन को विश्वदर्शन कराकर यह शिक्षा दी कि मैं ही सब कुछ हूँ सब मेरा ही स्वरूप है। उसके अतिरिक्त कुछ नहीं। परमात्मा सृष्टि के कण-कण में समाया हुआ है। हम सबके हृदय में व्याप्त है। जब हमारा चित्त निर्मल होगा तभी वह हमें दिखाई देगा।

परमात्मा चारों ओर है..

सात समंद की मसि करो, लेखनि सब बनरार।
धरती सब कागद करो, तऊ हरि गुण लिख्या न जाई।

यदि मैं सातों समुन्दों के जल की स्याही बना लूं तथा समस्त वन समूहों की लेखनी कर लूं तथा सारी पृथ्वी को कागज कर लू तब भी परमात्मा के गुण को लिखा नहीं जा सकता, क्योंकि वह परमात्मा अनंत गुणों से युक्त है।

ज्ञान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार ।
सोई सच्चिदानंदधन कर नर चरित उदार ।।

जो ज्ञान (बुद्धि), वाणी और इन्द्रियों से परे अजन्मा तथा माया, मन और गुणों के पार है वही सच्चिदानन्दधन भगवान श्रेष्ठ लीला करते है।

बीज आपु जर आपु ही डार पात पुनि आपु।
फूलहि में पुनि आपु रस में पुनि निधि आपु।।

बीज में और जड़ में भी वह ब्रह्म स्वयं ही समाया हुआ है शाखाओं या डालियों, पत्तों, फूलों और रसो में भी वह स्वयं ही व्याप्त हो रहा है।

कहुँ नाचत गावत कहुँ-कहुँ बजावत बीन।
सब मैं राजत आपु ही सब ही कला प्रवीन।।

वह ब्रह्म कहीं गाता, कहीं बीन बजाता, कहीं नाचता है। सभी कलाओं में निपुण वह ईश्वर ही सब रूपों में सुशोभित हो रहा है।

प्रभु पुस पावन सखा प्राणनहु को नाथ।
परम दयालु कृपालु प्रभु जीवन जाके हाथ ।।

वह प्रभू परिपूर्ण है पवित्र मित्र है, प्राणों का स्वामी है, अत्यंत दयालु है और सभी प्राणियों का जीवन उसी के हाथ में है।

मुकुट मोह परछाई ज्यों पुहुच मधे ज्यो बास ।
तेसहु श्री हरि बसें हिर दें मधे रैदास ।।

जिस प्रकार दर्पण में परछाई और पुष्प में सुगंध का वास होता है, रैदास कहते है कि उसी प्रकार हृदय में ही श्री हरि का निवास है।

ईश्वर को क्या चाहिए, निश्छल मन-मुस्कान ।
अपने ही धन पर भला, रीझे क्यों भगवान ।

बाहर क्या दिखलाए, अन्तः (अंदर) जपिए राम।
कहा काज संसार से, तुझे धनी से काम ।।

सांच बरारब तप नही,

झुठ बराबर पाप
जाके हृदय सांच है
ताके हृदय हरी आप ।

वो सत्य क्या है वो है हरी का नाम
सिर्फ
नाम नाम नाम ही नाम

लेखिका की कलम से....

लेखिका इस पुस्तक में अपनी लेखनी से गागर में सागर भरना चाहती है पर परमात्मा की महिमा इतनी अपार है।

हरी अनंता हरि कथा अनंत है

भगवान परमात्मा एक कल्पवृक्ष के समान हैं। मनुष्य इस वृक्ष से जो भी मांगता है, परमात्मा उसकी पूर्ति करते हैं। भक्त के प्रति भगवान की विशेष कृपा की अभिव्यक्ति है भगवान (परमात्मा) हरि के समान है भगवान तथा जीव निरंतर चमकते रहते है जो भी मेरी शरण में आता है मैं उसकी रखवाली करता हूँ। जो लोग भावनामृत में रहते हैं वे अध्यात्मवादी हैं अर्थात वे मुझमें है भगवान भी उनमें है।

जिस व्यक्ति में ईश्वर सेवा के अलावा अन्य कोई इच्छा नही है वही सन्यासी है। अत: वह जो सोचता है, करता है, भगवान की सेवा के लिए करता है जिस प्रकार परमात्मा आलोचना से परे है, वह भक्त की सारी आलोचना से परे होता है।

अत: प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होता है कि वो कर्म आदि करे, परमात्मा हेतु करे।

बुद्धिमान व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य है कि परमात्मा की दिव्य प्रेमाभक्ति में तत्पर रहे। इससे कोई अन्तर नही पड़ता कि कोई क्या है। यदि प्रेम से हम पत्ती

फूल जल फल ही भगवान को अर्पित करते हैं तो भगवान उसे सहर्ष स्वीकार करते है।

योगी जो एक पल भी परमात्मा के भाव में होता है उसका 24 घण्टे चिन्तन, मनन, श्रवण, स्मरण, वन्दन, कीर्तन अपनी आत्मा से भगवान की सेवा में रत रहता है। ऐसा जो कार्य होता है वह आध्यात्मिका से भरपूर होता है। योगी (भक्त) को आत्म साक्षात्कार होता है। यह योग होता है।

आत्म साक्षात्कार योगी (भक्त) को जब आत्म साक्षात्कार के बाद इस संसार में पुन: नहीं आता है।

जो वेदों का अध्ययन करते हैं और ज्ञान प्राप्त करते हैं वे अप्रत्यक्ष रूप से मेरी पूजा करते हैं चूंकि चारों वेदों - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अर्थववेद में प्रणव का ओंकार प्रधान है अत: इसे ईश्वर समझना चाहिए। कोई भी भक्त देवी प्रकृति में स्थित रहता है।

वह भौतिक प्रकृति के अधीन नही होता है क्योंकि वह परमात्मा की शरणागत हो जाता है।

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे कुन्तीपुत्र! यह मेरी भौतिक प्रकृति मेरी शक्तियों में से एक है जिसमें सारे चर तथा अचर प्राणी उत्पन्न होते हैं। यह जो जगत है बारम्बार सृजित और विनिष्ट होता है।

परमेश्वर अपनी चितवन मात्र से प्रकृति में जीवों को प्रविष्ट करते हैं वे अपनी इच्छाओं के अनुसार

विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं।

परमात्मा प्रत्यक्ष रूप से आसक्त नहीं होते। प्रकृति कुछ भी नहीं कर सकती। परमात्मा ही सर्वोपरि है।

साहेब तेरी साहिबी सब घट रही समाय।

ज्यों मेंहदी के पात मैं लाली रखी न जाए।

परम सत्ता के प्रकाश का, अनुभव, सारे वातावरण में जैसे मेंहदी के पत्ते में लालिमा होते हुए भी, अन्तर्ध्यान रहता है, उसी प्रकार ईश्वर जड़ चेतन में अन्तर्निहित होते हुए भी अदृश्य रहता है।

लेखिका के विचार....

जिन्दगी हमें बहुत कुछ सिखाती है। इसके अन्दर सुख, दुख भी होते हैं।

मान, अपमान, ईर्ष्या, चेष्टा, निन्दा, स्तुति सब कुछ जीवन में चलता रहता है।

जिन्दगी क्या है, हम क्या हैं हमें कहाँ जाना है, हम कर क्या रहे हैं, हमारा मकसद क्या है। इन सबका अनुभव होता है।

मैं बहुत खुश नसीब हूँ कि परमपिता परमात्मा की दया महर से उसने (परमपिता) कृपा की अपनी दासी पर कि इस पुस्तक को लिख सकूं। मेरे पति, मेरे प्यारे प्यारे 2 बच्चें बेटा बेटी, मेरी प्यारी प्यारी बेटी (बहुरानी), प्यारा दामाद, प्यारी प्यारी पोती परमात्मा की मुझ पर असीम कृपा हैं। मुझ पर उनका आशीर्वाद है।

मैं परमात्मा के सामने सर झुकाती हूँ। जब मैं ये किताब लिख रही थी तो मन में विचारों के सागर की लहर उठती थी।

जब मैंने लिखना शुरू किया तो परमात्मा की कृपा होती गई। मेरा यह मानना है कि ऐसी कोई कलम, पेन नही बनी जो परमात्मा के बारे में पूरा लिख सके।

परमात्मा तो हर एक में है वो हमसे कभी जुदा नहीं हो सकता। बस हमें उन्हें अपने अंदर शान्ति से महसूस करना है।

फिर क्या हर जगह हर सैकंड सब उसी का नजारा है। ये सब कुछ ऐसे है जेसे कस्तुरी का मृग, फिर फिर दुडे घास।

हम परमात्मा की खोज में लगे है परमात्मा हमसे दूर है ही नही बस हमें अपने अन्दर ध्यान देना है।

जब बात आती है प्रकृति और परमात्मा की तो परमात्मा प्रकृति बनाई है (रचना की है) क्या उसको बया कर सकते है नहीं ?

बे अंत की माया बे अंत जाने।

कबीर कहते है-

शान्ति भई जब गोविन्द जान्या ।

ना मेरा कोई रौब, ना मेरा कोई नाम।
ना मेरा कोई काम, ना मेरा कोई धाम ।।

मुझे तो गर्व है एक छोटी सी बात का कि
परमात्मा सबका है और परमात्मा मेरा भी

मैं परमात्मा के सामने हाथ जोड़कर अपनी लेखनी को विराम देती हूँ।

इति शुभम् भवतु

- रेखा तारानी

श्री गणेश जी की आरती

जय गणेश, जय गणेश, जय गणेश देवा।
माता जाकी पार्वती, पिता महादेवा।।

एकदन्त दयावन्त, चार भुजा धारी।
मस्तक सिन्दूर सोहे, मूसे की सवारी।।

अन्धन को आँख देत, कोढ़िन को काया।
बांझन को पुत्र देत, निर्धन को माया।।

पान चढ़े, फूल चढ़े और चढ़े मेवा।
लड्डुअन का भोग लागे संत करें सेवा।।

हार चढ़े, फूल चढ़े, और चढ़े मेवा।
'सूरश्याम' शरण आयो, सफल कीजै सेवा।।

दीनन की लाज राखो शम्भु सुत वारी।
मनोकामना को पूर्ण करो जाऊँ बलिहारी।।

जय गणेश, जय गणेश, जय गणेश देवा।
माता जाकी पार्वती, पिता महादेवा।।

श्री जगदीश जी की आरती

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे ।
भक्त जनों के संकट, दास जनों के संकट, क्षण में दूर करे ॥
॥ ॐ जय जगदीश हरे..॥
जो ध्यावे फल पावे, दुःख बिनसे मन का, स्वामी दुःख बिनसे मन का ।
सुख सम्पति घर आवे, सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥
॥ ॐ जय जगदीश हरे..॥
मात पिता तुम मेरे, शरण गहूं किसकी, स्वामी शरण गहूं मैं किसकी ।
तुम बिन और न दूजा, तुम बिन और न दूजा, आस करूं मैं जिसकी ॥
॥ ॐ जय जगदीश हरे..॥
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी, स्वामी तुम अन्तर्यामी ।
पारब्रह्म परमेश्वर, पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सब के स्वामी ॥
॥ ॐ जय जगदीश हरे..॥
तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्ता, स्वामी तुम पालनकर्ता ।
मैं मूरख फलकामी, मैं सेवक तुम स्वामी, कृपा करो भर्ता॥
॥ ॐ जय जगदीश हरे..॥
तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति, स्वामी सबके प्राणपति ।
किस विधि मिलूं दयामय, किस विधि मिलूं दयामय, तुमको मैं कुमति ॥
॥ ॐ जय जगदीश हरे..॥
दीन-बन्धु दुःख-हर्ता, ठाकुर तुम मेरे, स्वामी रक्षक तुम मेरे ।
अपने हाथ उठाओ, अपने शरण लगाओ, द्वार पड़ा तेरे ॥
॥ ॐ जय जगदीश हरे..॥
विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा, स्वमी पाप(कष्ट) हरो देवा ।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा ॥

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे ।
भक्त जनों के संकट, दास जनों के संकट, क्षण में दूर करे ॥

श्री शिव चालीसा

श्री शिव प्रात:स्मरण स्तोत्रम्

प्रात: स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृभभवाहनमम्बिकेशम् ।
खटवाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ।।
प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहं
सर्गस्थिति प्रलयकारणमादिदेवम् ।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोऽभिरामं
संसाररोगगहरमौषधमद्वितीयम् ।।
प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं
वेदान्तवेद्यमनघं पुरूषं महान्तम् ।
नामादिभेदरहितं षड्भावशून्यं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ।।

प्रात: समुत्थाय शिवं विचिन्त्य श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति ।
ते दु:खजातं बहुजन्मसंचितं हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भो: ।।

दोहा

अज अनादि अविगत अलख, अकल अतुल अविकार ।
बदौं शिव–पद–युग–कमल अमल अतीव उदार ।।1।।
आर्तिहरण सुखकरण शुभ भक्ति–मुक्ति दातार ।
करौ अनुग्रह दीन लखि अपना विरद विचार ।।2।।
परयो पतित भवकूप महँ सहज नकर आगार ।
सहज सुहृद पावन–पतित, सहजहि लेहु उबार ।।3।।
पलक–पलक आशा भरयो, रह्यो सुबाट निहार ।
ढरौ तुरंत स्वभाववश, नेक न करौ अबार ।।4।।

जय शिव शंकर औढरदानी । जय गिरितनया मातु भवानी ।।1।।
सर्वोत्तम योगी योगेश्‍र । सर्वलोक–ईश्‍वर परमेश्‍वर ।।2।।
सब उर प्रेरक सर्वनियन्ता । उपद्रष्टा भर्ता अनुमन्ता ।।3।।
पराशक्ति–पति अखिल विश्‍वपति। परब्रह्म परधाम परमगति ।।4।।
सर्वातीत अनन्य सर्वगत। निजस्वरूप महिमामें स्थितरत ।।5।।
अंगभूति–भूषित शमशानचर । भुजंगभूषण चन्द्रमुकुटधर ।।6।।
वृषवाहन नंदीगणनायक । अखिल विश्‍वके भाग्य–विधायक ।।7।।
व्याघ्रचर्म परिधाम मनोहर। रिछचर्म ओढे गिरिजावर ।।8।।
कर त्रिशूल डमरूवर राजत। अभय वरद मुद्रा शुभ साजत ।।9।।
तनु कर्पूर–गौर उज्जवलतम। पिंगल जटाजूट सिर उत्तम ।।10।।
भाल त्रिपुण्ड्र मुण्डमालाधर । गल रूद्राक्ष–माल शोभाकर ।।11।।
विधि हरि–रूद्र त्रिविध वपुधारी । बने सृजन–पालन लयकारी ।।12।।
तुम हो नित्य दयाके सागर। आशुतोष आनन्द उजागर ।।13।।
अति दयालु भोले भण्डारी। अग–जग सबके मंगलकारी ।।14।।
सती–पार्वती के प्राणेश्‍वर। स्कन्ध गणेश जनक शिव सुखकर ।।15।।
हरि–हर एक रूप गुणशीला। करत स्वामि–सेवक की लीला ।।16।।
रहते दोउ पूजत पुजवायत। पूजा–पद्धति सबन्हि सिखावत ।।17।।
मारूति बन हरि–सेवा कीन्ही। रामेश्‍वर बन सेवा लीन्ही ।।18।।
जग–हित घोर हलाहल पीकर । बने सदाशिव नीलकंठ वर ।।19।।
असुरासुर शुचि वरद शुभंकर । असुरनिहन्ता प्रभु प्रलयंकर ।।20।।
नमः शिवाय मंत्र पंचाक्षर । जपत मिटत सब क्लेश भयंकर ।।21।।
जो नर–नारि रटत शिव–शिव नित। नितको शिव अति करत परमहित ।।22।।
श्रीकृष्ण तप कीन्हों भारी । है प्रसन्न वर दियो पुरारी ।।23।।
अर्जुन संग लड़े किरात बन। दियो पाशुपत–अस्त्र मुदित मन ।।24।।
भक्तनके सब कष्ट निवारे। दे निज भक्ति सबन्हि उद्धारे ।।25।।

शंखचूड़ जालन्धर मारे । दैत्य असंख्य प्राण हर तारे ।।26।।
अन्धकको गणपति पद दीन्हों। शुक्र शुक्रपथ बाहर कीन्हों ।।27।।
तेहि सजीवनी विद्या दीन्हीं। बाणासुर गणपति-गति कीन्हीं ।।28।।
अष्टमूर्ति पंचानन चिन्मय । द्वादश ज्योतिर्लिंग ज्योतिर्मय ।।29।।
भुवन चतुर्दश व्यापक रूपा । अकथ अचिन्त्य असीम अनूपा ।।30।।
काशी मरत जंतु अवलोकी । देत मुक्ति पद करत अशोकी ।।31।।
भक्त भागीरथकी रूचि राखी । जटा बसी गंगा सुर साखी ।।32।।
रूरू अगस्त्य उपमन्यू ज्ञानी । ऋषि दधीचि आदिक विज्ञानी ।।33।।
शिवरहस्य शिवज्ञान प्रचारक । शिवहिं परम प्रिय लोकोद्धारक ।।34।।
इनके शुभ सुमिरनतें शंकर । देत मुदित ह्वै अति दुर्लभ वर ।।35।।
अति उदार करूणावरूणालय । हरण दैन्य दारिद्रत्य-दुःख-भय ।।36।।
तुम्हरो भजन परम हितकारी । विप्र शूद्र सब ही अधिकारी ।।37।।
बालक वृद्ध नारि-नर ध्यावहिं। ते अलभ्य शिवपदको पावहिं ।।38।।
भेदशून्य तुम सबके स्वामी । सहज सुहृद सेवक अनुगामी ।।39।।
जो जन शरण तुम्हारी आवत । सकल दुरित तत्काल नशावत ।।40।।

दोहा

बहन करौ तुम शीलवश, निज जनकौ सब भार ।
गनौ न अघ, अघ-जाति कछु, सब विधि करौ सँभार ।।1।।
तुम्हरो शील स्वभाव लखि, जो न शरण तव होय ।
तेहि सम कुटिल कुबुद्धि जन, नहिं कुभाग्य जन कोय ।।2।।
दीन-हीन अति मलिन मति, मैं अघ-ओघ अपार ।
कृपा-अनल प्रगटौ तुरत, करौ पाप सब छार ।।3।।
कृपा-सुधा बरसाय पुनि, शीतल करौ पवित्र।
राखौ पदकमलनि सदा, हे कुपात्रके मित्र ।।4।।

शिव रूद्राष्टकम्

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम ।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं चिदाकाशमाकाशवासं भजेअहम ॥
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं गिरा घ्यान गोतीतमीशं गिरीशम ।
करालं महाकाल कालं कृपालं गुणागार संसारपारं नतोअहम ॥
तुश्हाराद्रि संकाश गौरं गभीरं मनोभूत कोटिप्रभा श्री शरीरम ।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गङ्गा लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजङ्गा ॥
चलत्कुण्डलं भ्रू सुनेत्रं विशालं प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालम ।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ।।
प्रचण्डं प्रकृश्ह्टं प्रगल्भं परेशं अखण्डं अजं भानुकोटिप्रकाशम ।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं भजे.अहं भवानीपतिं भावगम्यम ॥
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी ।
चिदानन्द संदोह मोहापहारी प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥
न यावत.ह उमानाथ पादारविन्दं भजन्तीह लोके परे वा नराणाम ।
न तावत.ह सुखं शान्ति सन्तापनाशं प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासम ॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजां नतो.अहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम ।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो ॥

रुद्राश्ह्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोश्हये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेश्हां शम्भुः प्रसीदति ॥

आरती शिवजी की

जय शिव ओंकारा, भज शिव ओंकारा ।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव, अर्द्धंगी धारा ।।
ॐ हर हर महादेव।
एकानन चतुरानन पंचानन राजै।
हंसानन गरूडासन वृष्णवाहन साजै।।
ॐ हर हर महादेव।
दो भुज चारू चतुर्भुज दशभुज अति सौहे।
तीनों रूप निरखते त्रिभुवन–जन मोहै।।
ॐ हर हर महादेव।
अक्षमाला वनमाला रूण्डमाला धारी ।
त्रिपुरारी कंसारी करमाला धारी ।।
ॐ हर हर महादेव।
श्वेताम्बर पीताम्बर बाघाम्बर अंगे।
सनकादिक गरूडादिक भूतादिक संगे ।।
ॐ हर हर महादेव।
कर मध्ये सुकमण्डलु चक्र शूलधारी ।
सुखकारी दुखहारी जग–पालनकारी ।।
ॐ हर हर महादेव।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव जानत अविवेका ।
प्रणवाक्षर में शोभित ये तीनों एका ।।
ॐ हर हर महादेव।
त्रिगुणस्वामिकी आरति जो कोई नर गावै।
भनत शिवानन्द स्वामी मनवांछित पावै।।
ॐ हर हर महादेव।

शिव स्तुति

धन-धन भोलेनाथ, बाँट दिये, तीन लोक इक पल भर में।
ऐसे दीन दयाल मेरे शम्भु, भरो खजाना पल भर में।
प्रथम वेद ब्रह्मा को दे दिया, बने वेद के अधिकारी ।
विष्णु को दिया चक्र सुदर्शन, लक्ष्मी सी सुन्दर नारी ।
इन्द्र को दिया कामधेनु, और ऐरावत सा बलकारी ।
कुबेर को कर दिया आपने, सारी संपत्ति का अधिकारी।
अपने पास पात्र नहीं रखा, मग्न रहे बाघम्बर में।
ऐसे दीन दयाल मेरे शम्भु, भरो खजाना पल भर में।
अमृत तो देवताओं को दे दिया, आप हलाहल पान किया।
ब्रह्मज्ञान दे दिया उसी को, जिसने शिव तेरा ध्यान किया।
भागीरथ को दे दी गंगा, सब जग ने स्नान किया।
बडे-बडे पापियों को तारा, पल भर में कल्याण किया।
आप नशे में मस्त रहे, पिये भंग नित खप्पर में।
ऐसे दीन दयाल मेरे शंभु, भरो खजाना पल भर में।
लंका तो रावण को दे दी, बीस भुजा दस शीश दिए।
रामचन्द्र को धनुष बाण, और हनुमत को जगदीश दिए।
मन मोहन को दे दी मोहिनी, और मुकुट तुम बख्शीश दिए।
मुक्त हुए काशी के वासी, भक्ति में जगदीश दिए।
आप नशे में मस्त रहे, पिये भंग नित खप्पर में।
ऐसे दीन दयाल मेरे प्रभु, भरो खजाना पल भर में।
वीणा तो नारद को दे दी, हरि भक्तों को राग दिया।
ब्राह्मण को तो कर्मकांड, और सन्यासी को त्याग दिया।
जिस पर तुम्हारी कृपा भई, उसी को अनगन राग दिया।
जिसने ध्याया उसी ने पाया, महादेव तुम्हारे दर्शन में।
आप नशे में मस्त रहे, पिये भंग नित खप्पर में।
ऐसे दीन दयाल मेरे प्रभु, भरो खजाना पल भर में।

श्री शिव पंचाक्षर स्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय
तस्मै न काराय नमः शिवाय ॥1॥

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय
तस्मै म काराय नमः शिवाय ॥2॥

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द–
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय
तस्मै शि काराय नमः शिवाय ॥3॥

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य–
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय
तस्मै व काराय नमः शिवाय ॥4॥

यक्षस्वरूपाय जटाधराय
पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय
तस्मै य काराय नमः शिवाय ॥5॥

पंचाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥6॥

शिव तांडव स्तोत्र

जटाओ से है जिनके जल प्रवाह मात गंग का,
गले में जिनके सज रहा है हार विषभुजग का,
डमड्, डमड्, गगन, डमरू, कह रहा है शिवः शिवम्,
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।1।।

सजल लहर भी हो गर्द, चपल चपल ललाट पर,
धधक रहा है स्वर्णसा अनल सकल ललाट पर,
ललाट से ही अर्ध चन्द्र कह उठा शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।2।।

वे नन्दनी के वन्दनीय नन्दनीस्वरूप है
वे तीन लाक के पिता स्वरूप एक रूप है
कृपालु ऐसे है कि चित्त जप रहा शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।3।।

समस्त प्राणियों में उनकी ही कृपाऐं बह रही,
भुजंग देवता की शीशमणी प्रभाऐं कह रही
दशा दशा शिवः शिवम्, दिशा दिशा शिवः शिवम्तरल
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।4।।

वे देव देवताओ के अनादि से गढें हुए,
समक्ष उनके धूल पुष्प शीर्ष पर चढें हुए,
विपन्न कामनाओं की है सम्पदा शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।5।।

जो इन्द्र देवताके भी घमण्ड का दमन करे
जो कामदेव की समस्त कामना दहन करे
वही समस्त सिद्धियाँ वही महा शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।6।।

विशाल भाल पट्टिका पे अग्नि वे जलाए है
वे भस्म कामदेवता की शीश पर लगाए हैं
ऐ नन्दनी के रूप की तरल छटा शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।7।।

नवीन श्याम मेघकण्ठ पर सवार घर चले,
वही तो भाल चन्द्रनाथ गंग शीश धर चले,
सकल जगत का भार भी चले उठा शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।8।।

है नीलकंठ सौभ्य पंकजा समान है
मनुष्य क्या वे देवता के दण्ड का विधान है
समक्ष उनके काल स्वयं भज रहा शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।9।।

सदैव सर्वमंगला के कला के शीर्ष देवता,
वही विनाशकाल है वही जनक जनन सदा
नमन कृतज्ञ प्राण ये जपे सदा शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।10।।

प्रचण्ड ताण्डव प्रभा स्वयं विलीन देखकर
नृत्य देवता को नृत्य में प्रलीन देखकर
मृदंग मुग्ध भावना से कह उठा शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।11।।

समक्ष उनके देव जन का एक ही विधान है
समग्रता में उनकी दृष्टि एक ही समान है,
नमन नमन समानता के देवता शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।12।।

है एकमात्र कामना है मात्र एक वन्दना
उन्ही के दर्शनो से पूर्ण हो सभी उपासना

ना जाने कब करेगे हम पे यह कृपा शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।13।।

चरण को जिनके अप्सराओं के पराग चूमते
शरण में जिनके इन्द्रलोक और देवता झुमते,
अनादि से उमंग की परम्परा शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।14।।

प्रचंड अग्नि से समस्त पापकर्म भस्म कर
महान अष्ट सिद्धि से सभी अधर्म भस्म कर
विजय के मूलमंत्र की है साधना शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।15।।

वही अघोर नाथ है , उन्ही से पूर्ण शुद्धता
नीहित उन्ही के जाप में मनुष्यता विशुद्धता
समस्त मोह नाश के है देवता शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।16।।

पूजावसान ध्यान से करे जो पाठ स्तोत्र का
मुकुट बने वही मनुष्य परम विशिष्ट गोत्र का
उसी को देते है समस्त सम्पदा शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।17।।

वे शेष है, अशेष है प्रशेष है, विशेष है
जो उनको जेसा धार ले वे उनके जेसा वेष है,
वे नेत्र सूर्य देवता का, चन्द्रमा का भाल है
विलय भी वे, प्रलय भी वे, अकाल महाकाल है
उसी के नाथ हो लिए जो उनके साथ हो लिया
वही के हो लिए है वो, जहाँ सुना शिवः शिवम्
डमड्, डमड्, गगन, डमरू, कह रहा है शिवः शिवम्
तरल, अनल, गगन, पवन, धरा धरा शिवः शिवम् ।।18।।

श्री दुर्गा चालीसा

नमो नमो दुर्गे सुख करनी। नमो नमो दुर्गे दुःख हरनी॥
निरंकार है ज्योति तुम्हारी। तिहूं लोक फैली उजियारी॥
शशि ललाट मुख महाविशाला। नेत्र लाल भृकुटि विकराला॥
रूप मातु को अधिक सुहावे। दरश करत जन अति सुख पावे॥
तुम संसार शक्ति लै कीना। पालन हेतु अन्न धन दीना॥
अन्नपूर्णा हुई जग पाला। तुम ही आदि सुन्दरी बाला॥
प्रलयकाल सब नाशन हारी। तुम गौरी शिवशंकर प्यारी॥
शिव योगी तुम्हरे गुण गावें। ब्रह्मा विष्णु तुम्हें नित ध्यावें॥
रूप सरस्वती को तुम धारा। दे सुबुद्धि ऋषि मुनिन उबारा॥
धरयो रूप नरसिंह को अम्बा। परगट भई फाड़कर खम्बा॥
रक्षा करि प्रह्लाद बचायो। हिरण्याक्ष को स्वर्ग पठायो॥
लक्ष्मी रूप धरो जग माहीं। श्री नारायण अंग समाहीं॥
क्षीरसिन्धु में करत विलासा। दयासिन्धु दीजै मन आसा॥
हिंगलाज में तुम्हीं भवानी। महिमा अमित न जात बखानी॥
मातंगी अरु धूमावति माता। भुवनेश्वरी बगला सुख दाता॥
श्री भैरव तारा जग तारिणी। छिन्न भाल भव दुःख निवारिणी॥
केहरि वाहन सोह भवानी। लांगुर वीर चलत अगवानी॥
कर में खप्पर खड्ग विराजै। जाको देख काल डर भाजै॥
सोहै अस्त्र और त्रिशूला। जाते उठत शत्रु हिय शूला॥
नगरकोट में तुम्हीं विराजत। तिहुंलोक में डंका बाजत॥
शुंभ निशुंभ दानव तुम मारे। रक्तबीज शंखन संहारे॥
महिषासुर नृप अति अभिमानी। जेहि अघ भार मही अकुलानी॥

रूप कराल कालिका धारा। सेन सहित तुम तिहि संहारा॥
परी गाढ़ संतन पर जब जब। भई सहाय मातु तुम तब तब॥
अमरपुरी अरु बासव लोका। तब महिमा सब रहें अशोका॥
ज्वाला में है ज्योति तुम्हारी। तुम्हें सदा पूजें नर-नारी॥
प्रेम भक्ति से जो यश गावें। दुःख दारिद्र निकट नहिं आवें॥
ध्यावे तुम्हें जो नर मन लाई। जन्म-मरण ताकौ छुटि जाई॥
जोगी सुर मुनि कहत पुकारी। योग न हो बिन शक्ति तुम्हारी॥
शंकर आचारज तप कीनो। काम अरु क्रोध जीति सब लीनो॥
निशिदिन ध्यान धरो शंकर को। काहु काल नहिं सुमिरो तुमको॥
शक्ति रूप का मरम न पायो। शक्ति गई तब मन पछितायो॥
शरणागत हुई कीर्ति बखानी। जय जय जय जगदम्ब भवानी॥
भई प्रसन्न आदि जगदम्बा। दई शक्ति नहिं कीन विलम्बा॥
मोको मातु कष्ट अति घेरो। तुम बिन कौन हरै दुःख मेरो॥
आशा तृष्णा निपट सतावें। रिपू मुरख मौही डरपावे॥
शत्रु नाश कीजै महारानी। सुमिरौं इकचित तुम्हें भवानी॥
करो कृपा हे मातु दयाला। ऋद्धि-सिद्धि दै करहु निहाला।
जब लगि जिऊं दया फल पाऊं । तुम्हरो यश मैं सदा सुनाऊं ॥
दुर्गा चालीसा जो कोई गावै। सब सुख भोग परमपद पावै॥
देवीदास शरण निज जानी। करहु कृपा जगदम्ब भवानी॥

आरती श्री अम्बाजी

जय अम्बे गौरी मैया जय श्यामागौरी।
तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिव री ।।1।। जय अम्बे.
माँग सिंदूर विराजत टीको मृगमदको।
उज्जवलसे दोउ नैना, चंद्रवदन नीको ।।2।। जय अम्बे.
कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजै।
रक्त–पुष्प गल माला, कण्ठनपर साजै ।।3।। जय अम्बे.
केहरि वाहन राजत, खड्ग खपर धारी।
सुर–नर–मुनि–जन सेवत, तिनके दुखहारी ।।4।। जय अम्बे.
कानन कुण्डल शोभित, नासाग्रे मोती ।
कोटिक चंद्र दिवाकर सम राजत ज्योती ।।5।। जय अम्बे.
शुम्भ निशुम्भ विदारे, महिषासुर–घाती ।
धूम्रविलोचन नैना निशिदिन मदमाती ।।6।। जय अम्बे.
चण्ड मुण्ड संहारे, शोणितबीज हरे ।
मधु कैटभ दोउ मारे, सुर भयहीन करे ।।7।। जय अम्बे.
ब्रह्माणी, रूद्राणी तुम कमलारानी ।
आगम–निगम–बखानी, तुम शिव पटरानी ।।8।। जय अम्बे.
चौंसठ योगिनी गावत, नृत्य करत भैरूँ।
बाजत ताल मृदंगा औ बाजत डमरू ।।9।। जय अम्बे.
तुम ही जगकी माता, तुम ही हो भरता।
भक्तनकी दुख हरता सुख सम्पत्ति करता ।।10।। जय अम्बे.
भुजा चार अति शोभित, वर–मुद्रा धारी ।
मनवांछित फल पावत, सेवत नर–नारी ।।11।। जय अम्बे.
कंचन थाल विराजत अगर कपूर बाती ।
(श्री) मालकेतुमें राजत कोटिरतन ज्योती ।।12।। जय अम्बे.
(श्री) अम्बेजी की आरति जो कोई नर गावै।
कहत शिवानंद स्वामी, सुख सम्पत्ति पावै ।।13।। जय अम्बे.

आरती श्री जगदम्बे माँ

अम्बे तू है जगदम्बे काली, जय दुर्गे खप्पर वाली,
तेर ही गुण गायें भारती, ओ मैया हम सब उतारे तेरी आरती ।

तेर भक्त जनो पर मैया भीड़ पड़ी है भारी,
दानव दल पर टूट पड़ो माँ करके सिंह सवारी ।
सौ सौ सिंघो से है बलशाली, दस दस भुजाओं वाली,
दुष्टों को पल में संघारती ।
ओ मैया हम सब उतारे तेरी आरती ।

माँ बेटे की है इस जग में बड़ा ही निर्मल नाता,
पूत कपूत सुने है पर ना माता सुनी कुमाता ।
सबपे करुना दरसाने वाली,अमृत बरसाने वाली,
दुखिओं के दुखड़े निवारती ।
ओ मैया हम सब उतारे तेरी आरती ।

नहीं मांगते धन और दौलत ना चांदी ना सोना,
हम तो मांगे माँ तेरे मन में एक छोटा सा कोना ।
सब की बिगड़ी बनाने वाली, लाज बचाने वाली,
सतियों के सत को सवारती ।
ओ मैया हम सब उतारे तेरी आरती ।

चौदस के दिन तेरे भवन पे भीड़ लगे है भारी,
जो कोई मांगे सोई मिलता कहती दुनिया सारी।
मैया तू है देने वाली , ना कोई आवे खाली
भक्तो के कारज तू ही सारती।
ओ मैया हम सब उतारे तेरी आरती ॥

श्री विंध्येश्वरीजी चालीसा

॥ दोहा ॥

नमो नमो विन्ध्येश्वरी, नमो नमो जगदम्ब ।
सन्तजनों के काज में, करती नहीं विलम्ब ॥

जय जय जय विन्ध्याचल रानी। आदिशक्ति जगविदित भवानी ॥
सिंहवाहिनी जै जगमाता । जै जै जै त्रिभुवन सुखदाता ॥
कष्ट निवारण जै जगदेवी । जै जै सन्त असुर सुर सेवी ॥
महिमा अमित अपार तुम्हारी । शेष सहस मुख वर्णत हारी ॥
दीनन को दु:ख हरत भवानी । नहिं देखो तुम सम कोउ दानी ॥
सब कर मनसा पुरवत माता । महिमा अमित जगत विख्याता ॥
जो जन ध्यान तुम्हारो लावै । सो तुरतहि वांछित फल पावै ॥
तुम्हीं वैष्णवी तुम्हीं रुद्रानी । तुम्हीं शारदा अरु ब्रह्मानी ॥
रमा राधिका श्यामा काली । तुम्हीं मातु सन्तन प्रतिपाली ॥
उमा माध्वी चण्डी ज्वाला । वेगि मोहि पर होहु दयाला ॥ 10
तुम्हीं हिंगलाज महारानी । तुम्हीं शीतला अरु विज्ञानी ॥
दुर्गा दुर्ग विनाशिनी माता । तुम्हीं लक्ष्मी जग सुख दाता ॥
तुम्हीं जाह्नवी अरु रुद्रानी । हे मावती अम्ब निर्वानी ॥
अष्टभुजी वाराहिनि देवा । करत विष्णु शिव जाकर सेवा ॥
चौंसट्ठी देवी कल्यानी । गौरि मंगला सब गुनखानी ॥
पाटन मुम्बादन्त कुमारी । भाद्रिकालि सुनि विनय हमारी ॥

बज्रधारिणी शोक नाशिनी । आयु रक्षिनी विन्ध्यवासिनी ॥
जया और विजया वैताली । मातु सुगन्धा अरु विकराली ॥
नाम अनन्त तुम्हारि भवानी । वरनै किमि मानुष अज्ञानी ॥
जापर कृपा मातु तब होई । जो वह करै चाहे मन जोई ॥ 20
कृपा करहु मोपर महारानी । सिद्ध करहु अम्बे मम बानी ॥
जो नर धरै मातु कर ध्याना । ताकर सदा होय कल्याना ॥
विपति ताहि सपनेहु नाहिं आवै । जो देवीकर जाप करावै ॥
जो नर कहँ ऋण होय अपारा । सो नर पाठ करै शत बारा ॥
निश्चय ऋण मोचन होई जाई । जो नर पाठ करै चित लाई ॥
अस्तुति जो नर पढ़े पढ़अवे । या जग में सो बहु सुख पावे ॥
जाको व्याधि सतावे भाई । जाप करत सब दूर पराई ॥
जो नर अति बन्दी महँ होई । बार हजार पाठ करि सोई ॥
निश्चय बन्दी ते छुट जाई । सत्य वचन मम मानहु भाई ॥
जापर जो कछु संकट होई । निश्चय देविहिं सुमिरै सोई ॥ 30
जा कहँ पुत्र होय नहिं भाई । सो नर या विधि करे उपाई ॥
पाँच वर्ष जो पाठ करावै । नौरातन महँ विप्र जिमावै ॥
निश्चय होहिं प्रसन्न भवानी । पुत्र देहिं ता कहँ गुणखानी ॥
ध्वजा नारियल आन चढ़ावै । विधि समेत पूजन करवावै ॥
नित प्रति पाठ करै मन लाई । प्रेम सहित नहिं आन उपाई ॥
यह श्री विन्ध्याचल चालीसा । रंक पढ़त होवे अवनीसा ॥
यह जन अचरज मानहु भाई । कृपा दृश्टि जापर होइ जाई ॥
जै जै जै जग मातु भवानी । कृपा करहु मोहि निज जन जानी ॥ 40

आरती श्री विंध्येश्वरीजी

सुन मेरी देवी पर्वतवासनी । कोई तेरा पार ना पाया माँ ॥
पान सुपारी ध्वजा नारियल । ले तेरी भेंट चढ़ायो माँ ॥
सुन मेरी देवी पर्वतवासनी । कोई तेरा पार ना पाया माँ ॥
सुवा चोली तेरी अंग विराजे । केसर तिलक लगाया ॥
सुन मेरी देवी पर्वतवासनी । कोई तेरा पार ना पाया माँ ॥
नंगे पग मां अकबर आया । सोने का छत्र चडाया ॥
सुन मेरी देवी पर्वतवासनी । कोई तेरा पार ना पाया माँ ॥
ऊंचे पर्वत बनयो देवालाया । निचे शहर बसाया ॥
सुन मेरी देवी पर्वतवासनी । कोई तेरा पार ना पाया माँ ॥
सत्युग, द्वापर, त्रेता मध्ये । कालियुग राज सवाया ॥
सुन मेरी देवी पर्वतवासनी । कोई तेरा पार ना पाया माँ ॥
धूप दीप नैवैध्य आर्ती । मोहन भोग लगाया ॥
सुन मेरी देवी पर्वतवासनी । कोई तेरा पार ना पाया माँ ॥
ध्यानू भगत मैया तेरे गुन गाया । मनवंचित फल पाया ॥
सुन मेरी देवी पर्वतवासनी । कोई तेरा पार ना पाया माँ ॥

श्री राम चालीसा

श्री रघुबीर भक्त हितकारी। सुनि लीजै प्रभु अरज हमारी॥
निशि दिन ध्यान धरै जो कोई। ता सम भक्त और नहीं होई॥
ध्यान धरें शिवजी मन मांही। ब्रह्मा, इन्द्र पार नहीं पाहीं॥
दूत तुम्हार वीर हनुमाना। जासु प्रभाव तिहुं पुर जाना॥
जय, जय, जय रघुनाथ कृपाला। सदा करो संतन प्रतिपाला॥
तुव भुजदण्ड प्रचण्ड कृपाला। रावण मारि सुरन प्रतिपाला॥
तुम अनाथ के नाथ गोसाईं। दीनन के हो सदा सहाई॥
ब्रह्मादिक तव पार न पावैं। सदा ईश तुम्हरो यश गावैं॥
चारिउ भेद भरत हैं साखी। तुम भक्तन की लज्जा राखी॥
गुण गावत शारद मन माहीं। सुरपति ताको पार न पाहिं॥
नाम तुम्हार लेत जो कोई। ता सम धन्य और नहीं होई॥
राम नाम है अपरम्पारा। चारिहु वेदन जाहि पुकारा॥
गणपति नाम तुम्हारो लीन्हो। तिनको प्रथम पूज्य तुम कीन्हो॥
शेष रटत नित नाम तुम्हारा। महि को भार शीश पर धारा॥
फूल समान रहत सो भारा। पावत कोऊ न तुम्हरो पारा॥
भरत नाम तुम्हरो उर धारो। तासों कबहूं न रण में हारो॥
नाम शत्रुहन हृदय प्रकाशा। सुमिरत होत शत्रु कर नाशा॥
लखन तुम्हारे आज्ञाकारी। सदा करत सन्तन रखवारी॥
ताते रण जीते नहिं कोई। युद्ध जुरे यमहूं किन होई॥
महालक्ष्मी धर अवतारा। सब विधि करत पाप को छारा॥
सीता राम पुनीता गायो। भुवनेश्वरी प्रभाव दिखायो॥

घट सों प्रकट भई सो आई। जाको देखत चन्द्र लजाई॥
जो तुम्हरे नित पांव पलोटत। नवो निद्धि चरणन में लोटत॥
सिद्धि अठारह मंगलकारी। सो तुम पर जावै बलिहारी॥
औरहु जो अनेक प्रभुताई। सो सीतापति तुमहिं बनाई॥
इच्छा ते कोटिन संसारा। रचत न लागत पल की बारा॥
जो तुम्हरे चरणन चित लावै। ताकी मुक्ति अवसि हो जावै॥
सुनहु राम तुम तात हमारे। तुमहिं भरत कुल पूज्य प्रचारे॥
तुमहिं देव कुल देव हमारे। तुम गुरु देव प्राण के प्यारे॥
जो कुछ हो सो तुमहिं राजा। जय जय जय प्रभु राखो लाजा॥
राम आत्मा पोषण हारे। जय जय जय दशरथ के प्यारे॥
जय जय जय प्रभु ज्योति स्वरुपा। नर्गुण ब्रह्म अखण्ड अनूपा॥
सत्य सत्य जय सत्यव्रत स्वामी। सत्य सनातन अन्तर्यामी॥
सत्य भजन तुम्हरो जो गावै। सो निश्चय चारों फल पावै॥
सत्य शपथ गौरीपति कीन्हीं। तुमने भक्तिहिं सब सिधि दीन्हीं॥
ज्ञान हृदय दो ज्ञान स्वरुपा। नमो नमो जय जगपति भूपा॥
धन्य धन्य तुम धन्य प्रतापा। नाम तुम्हार हरत संतापा॥
सत्य शुद्ध देवन मुख गाया। बजी दुन्दुभी शंख बजाया॥
सत्य सत्य तुम सत्य सनातन। तुम ही हो हमरे तन-मन धन॥
याको पाठ करे जो कोई। ज्ञान प्रकट ताके उर होई॥
आवागमन मिटै तिहि केरा। सत्य वचन माने शिव मेरा॥
और आस मन में जो होई। मनवांछित फल पावे सोई॥
तीनहुं काल ध्यान जो ल्यावै। तुलसी दल अरु फूल चढ़ावै॥
साग पत्र सो भोग लगावै। सो नर सकल सिद्धता पावै॥

अन्त समय रघुबर पुर जाई। जहां जन्म हरि भक्त कहाई॥
श्री हरिदास कहै अरु गावै। सो बैकुण्ठ धाम को पावै॥

॥ दोहा ॥

सात दिवस जो नेम कर, पाठ करे चित लाय।
हरिदास हरि कृपा से, अवसि भक्ति को पाय॥
राम चालीसा जो पढ़े, राम चरण चित लाय।
जो इच्छा मन में करै, सकल सिद्ध हो जाय॥

आरती श्री रघुवर जी

आरती कीजै श्री रघुवर जी की, सत् चित् आनन्द शिव सुन्दर की ।
दशरथ तनय कौशल्या नन्दन, सुर मुनि रक्षक दैत्य निकन्दन ।
अनुगत भक्त भक्त उर चन्दन, मर्यादा पुरूषोत्तम वर की ।
निर्गुण सगुण अनूप रूप निधि, सकल लोक वन्दित विभिन्न विधि।
हरण शोक–भय दायक नव निधि, माया रहित दिव्य नर वर की ।
जानकी पति सुर अधिपति जगपति, अखिल लोक पालक त्रिलोक गति ।
विश्व वन्द्य अवन्ह अमित गति, एक मात्र गति सचराचर की ।
शरणागत वत्सल व्रतधारी, भक्त कल्प तरूवर असुरारी ।
नाम लेत जग पावनकारी, वानर सखा दीन दुख हर की ।

श्री राम स्तुति

श्री राम चंद्र कृपालु भजमन, हरण भाव भय दारुणम्।
नवकंज लोचन कंज मुखकर, कंज पद कन्जारुणम्।।
कंदर्प अगणित अमित छवी नव नील नीरज सुन्दरम्।
पट्पीत मानहु तडित रूचि शुचि नौमी जनक सुतावरम्।।
भजु दीन बंधु दिनेश दानव दैत्य वंश निकंदनम्।
रघुनंद आनंद कंद कौशल चंद दशरथ नन्दनम्।।
सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदारू अंग विभूषणं।
आजानु भुज शर चाप धर संग्राम जित खर-धूषणं।।
इति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि मन रंजनम्।
मम ह्रदय कुंज निवास कुरु कामादी खल दल गंजनम्।।
मनु जाहिं राचेऊ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर सावरों।
करुना निधान सुजान सिलू सनेहू जानत रावरो।।
एही भांती गौरी असीस सुनी सिय सहित हिय हरषी अली।
तुलसी भवानी पूजि पूनी पूनी मुदित मन मंदिर चली।।

।।सोरठा।।

जानि गौरी अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल वाम अंग फरकन लगे।।

।। सियावर श्रीरामचन्द्र जी की जय ।।

श्री कृष्ण चालीसा

॥ दोहा ॥

बंशी शोभित कर मधुर, नील जलद तन श्याम।
अरुण अधर जनु बिम्बा फल, पिताम्बर शुभ साज॥
जय मनमोहन मदन छवि, कृष्णचन्द्र महाराज।
करहु कृपा हे रवि तनय, राखहु जन की लाज॥

॥ चौपाई ॥

जय यदुनन्दन जय जगवन्दन। जय वसुदेव देवकी नन्दन॥
जय यशुदा सुत नन्द दुलारे। जय प्रभु भक्तन के दृग तारे॥
जय नट-नागर नाग नथैया। कृष्ण कन्हैया धेनु चरैया॥
पुनि नख पर प्रभु गिरिवर धारो। आओ दीनन कष्ट निवारो॥
वंशी मधुर अधर धरी तेरी। होवे पूर्ण मनोरथ मेरो॥
आओ हरि पुनि माखन चाखो। आज लाज भारत की राखो॥
गोल कपोल, चिबुक अरुणारे। मृदु मुस्कान मोहिनी डारे॥
रंजित राजिव नयन विशाला। मोर मुकुट वैजयंती माला॥
कुण्डल श्रवण पीतपट आछे। कटि किंकणी काछन काछे॥
नील जलज सुन्दर तनु सोहे। छवि लखि, सुर नर मुनिमन मोहे॥
मस्तक तिलक, अलक घुंघराले। आओ कृष्ण बांसुरी वाले॥
करि पय पान, पुतनहि तारयो। अका बका कागासुर मारयो॥
मधुवन जलत अग्नि जब ज्वाला। भै शीतल, लखितहिं नन्दलाला॥
सुरपति जब ब्रज चढ़यो रिसाई। मसूर धार वारि वर्षाई॥
लगत-लगत ब्रज चहन बहायो। गोवर्धन नखधारि बचायो॥
लखि यसुदा मन भ्रम अधिकाई। मुख महं चौदह भुवन दिखाई॥
दुष्ट कंस अति उधम मचायो। कोटि कमल जब फूल मंगायो॥

नाथि कालियहिं तब तुम लीन्हें। चरणचिन्ह दै निर्भय किन्हें॥
करि गोपिन संग रास विलासा। सबकी पूरण करी अभिलाषा॥
केतिक महा असुर संहारयो। कंसहि केस पकड़ि दै मारयो॥
मात-पिता की बन्दि छुड़ाई। उग्रसेन कहं राज दिलाई॥
महि से मृतक छहों सुत लायो। मातु देवकी शोक मिटायो॥
भौमासुर मुर दैत्य संहारी। लाये षट दश सहसकुमारी॥
दै भिन्हीं तृण चीर सहारा। जरासिंधु राक्षस कहं मारा॥
असुर बकासुर आदिक मारयो। भक्तन के तब कष्ट निवारियो॥
दीन सुदामा के दुःख टारयो। तंदुल तीन मूंठ मुख डारयो॥
प्रेम के साग विदुर घर मांगे। दुर्योधन के मेवा त्यागे॥
लखि प्रेम की महिमा भारी। ऐसे श्याम दीन हितकारी॥
भारत के पारथ रथ हांके। लिए चक्र कर नहिं बल ताके॥
निज गीता के ज्ञान सुनाये। भक्तन ह्रदय सुधा वर्षाये॥
मीरा थी ऐसी मतवाली। विष पी गई बजाकर ताली॥
राना भेजा सांप पिटारी। शालिग्राम बने बनवारी॥
निज माया तुम विधिहिं दिखायो। उर ते संशय सकल मिटायो॥
तब शत निन्दा करी तत्काला। जीवन मुक्त भयो शिशुपाला॥
जबहिं द्रौपदी टेर लगाई। दीनानाथ लाज अब जाई॥
तुरतहिं वसन बने ननन्दलाला। बढ़े चीर भै अरि मुँह काला॥
अस नाथ के नाथ कन्हैया।डूबत भंवर बचावत नैया॥
सुन्दरदास आस उर धारी। दयादृष्टि कीजै बनवारी॥
नाथ सकल मम कुमति निवारो। क्षमहु बेगि अपराध हमारो॥
खोलो पट अब दर्शन दीजै। बोलो कृष्ण कन्हैया की जै॥

॥ दोहा ॥

यह चालीसा कृष्ण का, पाठ करै उर धारि।
अष्ट सिद्धि नवनिधि फल, लहै पदारथ चारि॥

आरती कुंजबिहारी जी

आरती कुंजबिहारी की। श्री गिरधर कृष्णमुरारी की ।। (टेक)
गलेमें बैजंतीमाला, बजावै मुरलि मधुर बाला।
श्रवनमें कुण्डल झलकाला, नंदके आनँद नँदलाला ।।
श्री गिरधर कृष्नमुरारीकी।।

गगन सम अंग कांति काली, राधिका चमक रही आली,
लतनमें ठाढे बनमाली, भ्रमर–सी अलक, कस्तूरी–
तिलक, चंद्र–सी झलक, ललित छबि स्यामा प्यारीकी।
श्री गिरधर कृष्नमुरारीकी।।

कनकमय मोर–मुकुट बिलसै, देवता दरसनकों तरसै,
गगन सों सुमन रासि बरसै, बजे मुरचंग, मधुर–
मिरदंग, ग्वालिनी संग, अतुल रति गोपकुमारीकी।
श्री गिरधर कृष्नमुरारीकी।।

जहाँ मे प्रगट भई गंगा, सकल–मल–हारिणि श्रीगंगा,
स्मरन ते होत मोह–भंगा, बसी सिव सीस, जटाके बीच,
हरै अघ कीच, चरन छबि श्रीबनवारीकी ।
श्री गिरधर कृष्नमुरारीकी।।

चमकती उज्जवल तट रेनू, बज रही बृन्दावन बेनू
चहूँ दिसि गोपि ग्वाल धेनू, हँसत मृदु मंद, चाँदनी चंद,
कटत भव–फंद, टेर सुनु दीन दुखारीकी।
श्री गिरधर कृष्नमुरारीकी।।

आरती कुंजबिहारीकी। श्रीगिरधर कृष्णमुरारीकी ।।

श्री हनुमान चालीसा

दोहा

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि।।
बुद्धिहीन तनु जानिके, सुमिरौं पवन-कुमार।
बल बुधि बिद्या देहु मोहिं, हरहु कलेस बिकार।।

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर। जय कपीस तिहुँ लोक उजागर।।
रामदूत अतुलित बल धामा। अंजनि-पुत्र पवनसुत नामा।।
महाबीर बिक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी।।
कंचन बरन बिराज सुबेसा। कानन कुंडल कुंचित केसा।।
हाथ ब्रज औ ध्वजा बिराजै। काँधे मूँज जनेऊ साजै।।
संकर सुवन केसरीनंदन। तेज प्रताप महा जग बंदन।।
विद्याबान गुनी अति चातुर। राम काज करिबे को आतुर।।
प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया। राम लखन सीता मन बसिया।।
सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा। बिकट रूप धरि लंक जरावा।।
भीम रूप धरि असुर सँहारे। रामचन्द्र के काज सँवारे।।
लाय सजीवन लखन जियाये। श्रीरघुबीर हरषि उर लाये।।
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई। तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई।।
सहस बदन तुम्हरो जस गावैं। अस कहि श्रीपति कंठ लगावैं।।
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा। नारद सारद सहित अहीसा।।
जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते। कबि कोबिद कहि सके कहाँ ते।।
तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा। राम मिलाय राज पद दीन्हा।।
तुम्हरो मंत्र बिभीषन माना। लंकेस्वर भए सब जग जाना।।
जुग सहस्त्र जोजन पर भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू।।

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लाँधि गये अचरज नाहीं।।
दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते।।
राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे।।
सब सुख लहै तुम्हारी सरना। तुम रच्छक काहू को डर ना।।
आपन तेज सम्हारो आपै। तीनों लोक हाँक तें काँपे।।
भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै।।
नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा।।
संकट तें हनुमान छुड़ावै। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै।।
सब पर राम तपस्वी राजा। तिन के काज सकल तुम साजा।।
और मनोरथ जो कोई लावै। सोइ अमित जीवन फल पावै।।
चारों जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा।।
साधु संत के तुम रखवारे। असुर निकंदन राम दुलारे।।
अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता। अस बर दीन जानकी माता ।।
राम रसायन तुम्हरे पासा। सदा रहो रघुपति के दासा।।
तुम्हरे भजन राम को पावै। जनम जनम के दुख बिसरावै।।
अंत काल रघुबर पुर जाई। जहाँ जन्म हरि भक्त कहाई।।
और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्ब सुख करई।।
संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा।।
जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरू देव की नाईं।।
जो सत बार पाठ कर कोई। छूटहि बंदि महासुख होई।।
जो यह पढ़ै हनुमान चालीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा।।
तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजै नाथ हृदय महँ डेरा।।

पवनतनय संकट हरन। मंगल मूरति रूप।
रामलखन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप।।

संकटमोचन हनुमानाष्टक

बाल समय रबि भक्षि लियो तब, तीनहुँ लोक भयो अँधियारो।
ताहि सों त्रास भयो जग को, यह संकट काहु सों जात न टारो।।
देवन आनि करी विनती तब, छाँडि दियो रवि कष्ट निवारो ।।
को नहिं जानत है जग में, कपि संकट मोचन नाम तिहारो ।।1।।
बालि की त्रास कपीस बसै गिरि, जात महाप्रभु पंथ निहारो ।
चौंकि महामुनि साप दिया तब, चाहिए कौन बिचार विचारो ।।
कै द्विज रूप लिवाय महाप्रभु, सो तुम दास के शोक निवारो ।।2।।
अंगद के संग लेन गये सिय, खोज कपीस यह बेन उचारो।
जीवत ना बचिहौ हम सों जु, बिना सुधि लाये इहाँ पगु धारो ।।
हेरि थके तट सिन्धु सबै तब, लाय सिया सुधि प्राण उबारो ।।3।।
रावण त्रास दई सिय को सब, राक्षसि सों कहि शोक निवारो ।
ताहि समय हनुमान महाप्रभु, जाय महा रजनीचर मारो ।।
चाहत सीय अशोक सों आगिसु, दै प्रभु मुद्रिका शोक निवारो ।।4।।
बाण लग्यो उर लक्ष्मण के तब, प्राण तजे सुत रावण मारो।
लै गृह वैद्य सुषेन समेत, तबै गिरि द्रोण सु वीर उपारो ।।
आनि सजीवन हाथ दई तब, लक्ष्मण के तुम प्राण उबारो ।।5।।
रावण युद्ध अजान किया तब, नाग की फाँस सबै सिर डारो ।
श्रीरघुनाथ समेत सबै दल, मोह भयो यह संकट भारो ।।
आनि खगेश तबै हनुमान जू, बन्धन काटि सुत्रास निवारो ।।6।।
बंधु समेत जबै अहिरावन, लै रघुनाथ पताल सिधारो ।
देविहिं पूजि भली विधि सों बलि, देउ सबै मिलि मंत्र बिचारो।।
जाय सहाय भयो तब ही, अहिरावण सैन्य समेत सँहारो ।।7।।
काज किये बड़ देवन के तुम, बीर महाप्रभु देखि बिचारो।
कौन सो संकट मोर गरीब को, जो तुमसों नहिं जात है टारो ।।
बेगि हरो हनुमान महाप्रभु, जो कछु संकट होय हमारो ।।8।।

दोहा– लाल देह लाली लसै, अरू धरि लाल लंगूर ।
बज्र देह दानव दलन, जय–जय–जय कपि सूर ।।

बजरंग बाण

दोहा–

निश्चय प्रेम प्रतीति ते, विनय करैं सनमान।
तेहि के कारज सकल शुभ, सिद्ध करैं हनुमान ।।

जय हनुमन्त सन्त हितकारी। सुनि लीजै प्रभु अरज हमारी ।।
जनके काज विलम्ब न कीजे। आतुर दौरि महा सुख दीजै।।
जैसे कूदि सिन्धु महि पारा । सुरसा बदन पैठि बिस्तारा ।।
आगे जय लंकिनी रोका। मारेहु लात गई सुर लोका ।।
जाय विभीषण को सुख दीन्हा। सीता निरखि परमपद लीन्हा।।
बाग उजारि सिन्धु महँ बोरा। अति आतुर यमकातर तोरा ।।
अक्षय कुमार को मारि सँहारा। लूम लपेटि लंक को जारा ।।
लाह समान लंक जरि गई। जय जय धुनि सुर पुर महँ भई।।
अब विलम्ब केहि कारन स्वामी । कृपा करहु उर अन्तर्यामी ।।
जय जय लक्ष्मण प्राण के दाता। आतुर होइ दुख करहु निपाता ।।
जय गिरिधर–जय जय सुखसागर । सुर–समूह समरथ भटनागर।।
ॐ हनु–हनु–हनु हनुमंत हठीले। बैरिहिं मारू वज्र की कीले ।।
गदा वज्र लै बैरि हिं मारो । महाराज प्रभु दास उबारो ।।
ॐकार हुँकार महाबीर धावो। वज्र गदा हनु विलम्ब न लावो ।।
ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं हनुमंत कपीशा। ॐ हुं हुं हुं हनु अरि उर शीशा ।।
सत्य होहु हरि शपथ पाय के। राम दूत धरू मारू जायके ।।
जय–जय–जय हनुमंत अगाधा। दुख पावत जन केहि अपराधा ।।
पूजा जप तप नेम अचारा। नहिं जानत हौं दास तुम्हारा ।।
वन उपवन मग गिरिगृह माहीं । तुम्हरे बल हम डरपत नाहीं ।।
पाँय परौं कर जोरि मनावौं। यहि अवसर अब केहि गोहरावौं।।

जय अंजनि कुमार बलवन्ता । शंकर सुवन वीर हनुमन्ता।।
बदन कराल काल कुल घालक। राम सहाय सदा प्रति पालक।।
भूत प्रेत पिशाच निशाचर। अग्नि बैताल काल मारीमर ।।
इन्हें मारू तोहिं सपथ राम की । राखऊ नाथ मर्यादा नाम की ।।
जनक सुता हरिदास कहावो। ताकी शपथ बिलम्ब न लावो।।
जय–जय–जय धुनि होत अकाशा। सुमिरत होत दुसहु दुख नाशा।।
चरण शरण कर जोरि मनावौं। यहि अवसर अब केहि गोहरावौं।।
उठु–उठु चलु तोहिं राम दुहाई। पाँय परौं कर जोरि मनाई ।।
ॐ चं चं चं चपल चलन्ता। ॐ हनु हनु हनु हनु हनु हनुमंता ।।
ॐ हं हं हाँक देत कपि चंचल। ॐ सं सं सहमि पराने खल दल।।
अपने जन को तुरत उबारो । सुमिरत होय आनन्द हमारो।।
यहि बजरंग बाण जेहि मारे। ताहि करो फिर कौन उबारे ।।
पाठ करै बजरंग बाण की । हनुमत रक्षा करैं प्राण की ।।
यह बजरंग बाण जो जापै। ताते भूत प्रेत सब काँपे।।
धूपदेय अरू जपै हमेशा। ताके तनु नहिं रहे कलेशा।।

दोहा

प्रेम प्रतीतिहिं कपि भजै, सदा धरैं उर ध्यान ।
तेहि के कारज सकल शुभ, सिद्ध करैं हनुमान ।।

किष्किन्धा काण्ड

(दोहा 28)

बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ ।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ ।।

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा।
जियँ संसय कछु फिरती बारा ।।
जामवंत कर तुम्ह सब लायक ।
पठइअ किमि सबही कर नायक ।।
कहइ रीछपति सुनु हनुमाना ।
का चुप साधि रहेहु बलवाना ।।
पवन तनय बल पवन समाना ।
बुधि बिबेक बिग्यान निधाना ।।
कवन सो काज कठिन जग माहीं।
जो नहिं होइ तात मुम्ह पाहीं।।
राम काज लगि तव अवतारा ।
सुनतहिं भयउ पर्बतकारा ।।
कनक बरन तन तेज बिराजा ।
मानहुँ अपन गिरिन्ह कर राजा ।।
सिंहनाद करि बारहिं बारा ।
लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा ।।
सहित सहाय रावनहि मारी ।
आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी ।।

सहित सहाय रावनहि मारी ।
आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी ।।
जामवंत मैं पूँछउँ तोही ।
उचित सिखावनु दीजउ मोही ।।
एतना करहु तात तुम्ह जाई ।
सीतहि देखि कहहु सुधि आई।।
तब निज भुज बल राजिवनैना ।
कौतुक लागि संग कपि सेना ।।

छं0- कपि सेन संग सँघारि निसिचर
रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि
नारदादि बखानिहैं ।।
जो सुनत गावत कहत समुझत
परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर
दास तुलसी गावई

(दोहा 30 (क))

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरू नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहि त्रिसिरारि।।

(सोरठा 30 (ख))

नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक ।।

आरती श्री हनुमानलला जी

आरती कीजै हनुमानललाकी।
दुष्टनदलन रघुनाथ कलाकी ।। टेक।।
जाके बलसे गिरिवर काँपे।
रोग दोष जाके निकट न झाँपे ।।
अंजनिपुत्र महा बलदाई ।
संतनके प्रभु सदा सहाई ।।
दे बीरा रघुनाथ पठाये ।
लंका जारि सीय सुधि लाये ।।
लंका सो कोट समुद्र जी खाई ।
जात पवनसुत बार न लाई ।।
लंका जारि असुर संहारे ।
सीतारामजी के काज सँवारे ।।
लक्ष्मण मूर्छित पड़े सकारे ।
आनि सजीवन प्रान उबारे ।।
पैठि पताल तोरि जम–कारे ।
अहिरावण की भुजा उखारे ।।
बायें भुजा असुरदल मारे ।
दहिने भुजा संतजन तारे ।।
सुर नर मुनि आरती उतारे ।
जय जय जय हनुमान उचारे ।।
कंचन थार कपूर लौ छाई।
आरति करत अंजना माई ।।
जो हनुमानजी की आरति गावै।
बसि बैकुंठ परम पद पावै ।।
लंका विध्वंस किये रघुराई। तुलसीदास स्वामी कीर्ति गाई।

श्रीमती रेखा तारानी

(मैनेजिंग डायरेक्टर, तारानी हॉस्पिटल)

जन्म : 6 जुलाई 1960, नीमच (म.प्र.)

प्रकृति और परमात्मा

सृष्टि में जितने भी प्राणी है उन सबकी उत्पत्ति
परम पुरूष द्वारा ही हुई है
अर्थात
परमात्मा में ही सृष्टि को मानना चाहिए।
जिस प्रकार समूचे वातावरण में हवा व्याप्त है
उसी प्रकार सत्य, आनन्द प्रदाता परमपिता परमेश्वर भी
सारी सृष्टि में व्याप्त रहता है

YouTube Rekha Tarani

Author's Contact :

122/69, Agrawal Farm, Mansarovar, Jaipur-302020

E-mail : taranihospital@yahoo.com

Mobile : 9351368893, 9314626599